|| श्री वीतरागायनमः ||

जैन में चमकता चांद

वाइस सम्प्रदाय के जैनाचार्य
पूज्यवर श्री १००८ महाराज
श्री जौहरीलाल का स्तवन

मुद्रक व प्रकाशक

केशरीचँद माणकचँद डागा बीकानेर

रचयिता

मास्टर जवाहरमल शर्मा शाकद्वीपी ब्राह्मण

भोजक बीकानेर

विक्रम संवत् १९८४	अमूल्य	प्रथमावृत्ति १००० प्रति

जैन में चमकता चांद

गजल तर्ज – (सियाराम अयोध्या बुलालो मुझे)

मेरे पूज्य जी दर्श दिखादो मुझे,
अपने चरणों का दास बनालो मुझे।

शेर—पंच महाव्रत पालते अरु करते उग्र विहार हैं॥
जीव की रक्षा लिये करते शुभ उपकार हैं।
मैं तो आया शरण अब तारो मुझे॥ मेरे०॥ १॥

इस संसार सागर के अन्दर नाव डूबी जात है।
तू ही खिवैया है मेरा, और तूही तारण तार है॥
अब तो करके दया मुनि तारो मुझे॥ मेरे०॥ २॥

नाम सुनकर आपका दर्शन को मैं आया यहां।
व्याख्यान सुनकर मुनिका दिल में हरखाया जहां॥
अब तो मुक्ति का मार्ग बतलादो मुझे॥ मेरे०॥ ३॥

विद्या में प्रवीण हो और ज्ञान के भंडार हो।
सत्य समुद्र हो और दीन के उद्धार हो॥

अब तो घोर दुखों से बचादो मुझे ॥ मेरे० ॥ ४ ॥
सम्वत उगनीसोचौरासीये का आश्विन शुक्ला दशमी,
विनती करे जवाहरमल कब पार उतारसी ।
अब तो चौमासे की मेहर फरमादो मुझे ॥ ५ ॥

॥ जीव रक्षा की लावनी ॥

सुनो मित्रवर ध्यान लगा कर एक अर्जी तुम्हें सुनाते हैं ।
जीव हिंसा से हुई जो हानि सो हम तुम्हें बताते हैं ॥
जीव हिंसा से हुई बीमारी और जीव हिंसा से काल पड़ा ।
जीव हिंसा से हवा बिगड़ गई जीव हिंसा से जल बिगड़ा ॥
जीव हिंसा से खांड बिगड़ गई जीव हिंसा से घी कड़ा ।
जीव हिंसा होगई भारत में भारत हो गया सड़ा सड़ा ॥
शोक है उन जो दुष्टों को जो पेट में कबर बनाते हैं ।
हिन्दू मत की पुस्तक में देखो वहां पै लिखी जीव दया ।
चार वेद उपवेद मनुस्मृति भी देती शिक्षा कसायों को ॥
भारत में श्री कृष्णचन्द्र ने कीनी जीवों पै दया मया ।
कोई कहता है मांस खाने से विद्या बहूत आजाती है ।

जब ऐसाहै तो क्यों नहीं कुतियां मिडिल पास करआतीहै ॥
कोई कहता है मांस खाने से बुद्धि बहुत बढ़ जाती है ।
जब ऐसा है तो क्यों नहीं बिल्ली जज साहब बनजाती है ॥
कोई कहता है मांस खाने से ताकत बहुत आजाती है ।
जब ऐसा है क्यों न लोमड़ी सिंह को मार भगाती है ॥
कोई कहता है मांस खाने से काम रती रुक जाती है ।
जब ऐसा है तो क्यों रंडी फिर नित नये यार बुलाती है।
बिना ज्ञान के मांस अहारी झूठी शंका लाते हैं ॥ सुनो०॥

॥ राग प्रभाती ॥

जैन वर शंकट काटन हार ॥

हे मुनि सुमिर नाम जिन थारे,
कोटिक देव लोक पग धारे।
हमहूं तारि जगमांहि दुखारे,
कहां लगाई दार ॥ जैन वर ॥ १ ॥
महिमा अमित नाथ गुण केरी,
किमि कर वरणि सके मति मोरी ।

अब मुनि क्यों करत हो देरी,
नाव पड़ी मंझ धार ॥ जैन वर ॥ २ ॥

हम दूसर उपाय नहीं सूझा,
हे कृपालु जिनवर बिन दूजा।
सब तजि करूं भाव पद पूजा,
तू ही नाम आधार ॥ जैन वर ॥ ३ ॥

हे मुनि क्यों जन त्रास हरोना,
भव सागर से पार करोना।
दास जानि जिन कृपा करोना,
विनती करू बारम्बार ॥ जैन वर ॥ ४ ॥

बारहि बार प्रणाम करेही,
तोहि जैन लखि परम स्नेही।
हम परहूं मुनि कृपा करेही,
क्यों नहीं उतारो भव से पार ॥ जैन वर ॥ ५ ॥

राग गजल—(दर्शन दीजो नंदलाल गौ के चराने वाले)
धन्य २ श्रेष्ठ मुनि ऋषिराज दर्श दे पातक हरने वाले।

अब से पूर्व मुनि छः वर्ष,

अन्न का त्यागन किया सहर्ष।

रोज इस देश हेतु उत्कर्ष।

कर रहे कार्य अनेक निराले ॥ धन्य० ॥ १ ॥

जय २ जैन धर्म के सूर,

पातक तिमिर विनाशे दूर।

काम क्रोध तजि गहि मद चूर,

सत्य पथ पर चलवाने वाले ॥ धन्य ॥ २ ॥

कर २ धर्म का प्रचार,

देश का किया बड़ा उपकार।

ऋषि जी भले बने हितकार,

सोया हिन्द जगाने वाले ॥ धन्य० ॥ ३ ॥

मुनि शुभ नाम जौहरीलाल,

सच मुच कोष जवाहर लाल।

हो विद्या के भण्डार ॥

पंच महा व्रत पालने वाले ॥ धन्य० ॥ ४ ॥

करिहै विनती बारम्बार,

स्नेही प्रेम प्रसाव पसार ।
हम हैं सेवक मुनि तुम्हार,
चरण में शीश झुकाने वाले ॥ धन्य० ॥ ५ ॥

राग गजल (तर्ज सियाराम अयोध्या बुलालो मुझे)

जग दुर्लभ दर्शन सन्त सखे,
सत संग सुगुण कहि वेद थके ।
गुणमान हो मतिमान हो, मुनि सर्व गुण सम्पन्न हो ।
तुव दर्श के भागी हुए हे मोरे नैना धन्य हो ॥
गुण गावत प्रेम स्नेही लखे ॥ १ ॥
नहि जान किस शुभ कर्म से भागी हुआ ऋषि दर्शका ।
दर्शनसे सब कुछ पालिया फिर क्या ठिकाना हर्षका ॥
मुनि के सिद्धि सुरेश हमेश लखे ॥२॥
विद्या प्रचारक धर्म ग्राहक ब्रह्मचारी नाथ हो ।
पंच महाव्रत पाल कर मुनि गाव जिन गुण गाथ हो ॥
वृतपालन कठिन को वर्ण सके ॥ जग ॥३॥

जो कुछ करें प्रचार जग में देश जाति धर्म हित।
ऐसे तपस्वी सज्जन की सहाय करिहैं ईश नित॥
होकर सफल सुधारस सार चखे ॥जग॥४॥
शुभ नाम जोहरीलाल मुनिका, सच जवाहर कोष है।
शुचि सुयशघन वाणी मदन छलछिद्र विन निर्दोष है॥
ऐसे सज्जनों को ईश बनाये रखे ॥जग॥५॥
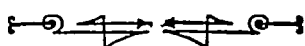
प्रिय सज्जन वृन्दो! परम हर्ष के साथ लिखना पड़ता है कि जैन धर्म के शिरोमणि परमपूज्यवर श्री १००८ जैनाचार्य महाराज जोहरीलाल जी का चतुर्मास आज कल भीनासर में वर्त्तमान है। ये बड़े भारी विद्वान संस्कृत के पूर्ण वेत्ता विद्या प्रचारक देशोद्धारक तथा उचित कर्त्तव्यों के पूर्ण रूप से पाबन्द हैं। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि मुनि जी महाराज करीब छः वर्ष से अन्न प्रायः कम लेते हैं केवल दही दूध इत्यादि पर ही अपना निर्वाह करते है रात दिन परब्रह्म परमात्मा के सत्य प्रेम में निमग्न रहते हैं। ये जैन धर्म

के अन्दर साक्षात देव के तुल्य हैं। इनका स्वभाव अत्यन्त नम्र सरल वाणी अत्यन्त कोमल मधुर तथा उपदेश ऐसा मनोहर और आकर्षक है कि अन्य धर्माव-लम्बी सहस्रों पुरुष उसे श्रवण करने के लिये आते हैं किसी भी अन्य मत का खंडन नहीं करते इन्होंने देशी विलायती के कई वर्षों के झगड़े का निर्णय भीनासर में क्षणमात्र के भीतर ही भीतर करा दिया।

अछूत जातियों को उपदेश देकर मदिरा इत्यादि का त्यागन करा दिया निश दिन सत्य उपदेश करते हैं गौ रक्षा का अपना धर्म समझते है इनके मुख्य शिष्य पंडितरत्न घासीलालजी तथा गणेशीलालजी संस्कृत के अच्छे ज्ञाता और बालब्रह्मचारी हैं तपस्वीजी सुन्दरलालजी दो मास की कठिन तपस्या कीनी और केशरीमलजी महाराज ने तीन मास पांच दिवस का उपवास किया था इतनी कठिन तपस्या करते हैं जितनी कोई अन्य धर्मावलम्बी विरला ही करता होगा धर्म उद्धार के लिए तनमन से पूर्ण प्रयत्न कररहे हैं चरबी के अपवित्र वस्त्रों का

निषेध करना बाल विवाह तथा वृद्ध विवाह का भी निषेध करतेहैं और देश सुधारक बातों का पूर्ण रूपसे ध्यान रखते हैं। आशा है कि इन के और शिष्य भी इसी माफिक शुभ कार्य करेंगे श्री पुज्य जी महाराज का सदुपदेश श्रवण करने के लिए महाराजा साहब श्री भैरूंसिंहजी तथा श्री चीफ मिनिस्टर दीवान साहब औफ बीकानेर भी सहर्ष पधारे थे और कई अच्छे २ ऊंची पदवी वाले इत्यादि सज्जन दर्शन और व्याख्यान सुनने को पधारे थे वास्तव में इनका दर्शन अवश्य करने योग्य है इन्हीं के सदुपदेश से श्रीमान् सेठ कानीराम जी तथा बहादुरमल जी बाठिया भीनासर वाले ने विद्याध्ययन के लिए अछूतों के वास्ते पाठशाला खोली है ये दोनों सज्जन बड़े ही उपकारी नम्र स्वभाव के हैं इतना द्रव्य होने पर भी ज़रा भी अभिमान नहीं है हरेक सज्जन से बड़े प्रेम से वार्ता करते हैं कान्फ्रेंस का आठवां अधिवेशन बड़े समारोह

के साथ पूर्ण हुआ है जिसके सभापति श्रीमान चोंडीलाल भाई गुजरात के रहने वाले हुए जो कि बड़े धर्म प्रचारक विद्वान् सज्जन हैं श्रीमान् नयमलजी चोरडिया नीमच वाले जो कि अपनी अपार धन सम्पत्ति से स्वानन्द न भोग कर और उससे अधिक सम्बन्ध न रख कर खादी के वस्त्र पहन कर देशोद्धार में तन मन से लगे हुए हैं श्रीमान् वैद मिलापचन्दजी झांसी वाले ने कान्फ्रेन्स के सम्पूर्ण व्ययकी जुम्मेवारी अपने ऊपर ली थी। श्रीमान आनन्दराज जी सूराणा जोधपुर वाले ने कान्फ्रेन्स के प्रत्येक कार्य की सूचना इत्यादि देने वाले साहसी विश्वासी दृढ़ी पुरुष हैं। धर्म सत्यावलम्बी हैं श्रीमान सेठ भैरूदानजी सेठीया तत्पुत्र जेठमल जी सेठीया बड़े दानी विद्या प्रचारक दीन हित-कारक तथा परोपकारी सज्जन पुरुष हैं जिन्होंने लड़कों के लिए व कन्याओं के लिए अलग २ पाठशालाएं खोल रक्खी हैं इसके सिवाय ~~ट्रैनिंग स्कूल~~ पुस्तकालय तथा छात्रालय खोल रक्खे हैं। धर्म में अधिक रुचि है आशा

है कि इनके और पुत्र भी ऐसे ही होंगे श्रीमान् सेठ आनन्दमल जी श्रीमाल धर्म सम्बन्धी सम्मति देने वाले तथा कोमल वाणी नम्र स्भाव के सज्जन हैं श्रीमान् सेठ हजारीमल जी मंगलचन्दजी मालु धर्म में दृढ़ी दीन हितकारक अच्छी सम्मति देने वाले हैं जैन में एक और नेता श्रीमान् सेठ लक्ष्मीचन्दजी डागा थे जिनका अब स्वर्गवास हो चुका है स्वधर्म के पूर्ण अनुकरणकर्ता तथा परोपकारी दानी पुरुष थे जिन्होंने औषधालय खोल रक्खा है उनके सुपुत्र केशरीचन्द व माणिकचंद से भी अनेक प्रकार की शुभ आशाएं हैं प्रिय सज्जनों कहां तक वर्णन करें ये जो कुछ भी शुभ चाहनाएं उपरोक्त सेठ गणोंके उरमें वर्त्तमान हैं इन सब श्रावकों को प्रभावक श्री पूज्य जी महाराज का सदुपदेश ही दृष्टिगोचर होता है परमात्मा ऐसे सज्जनों की वृद्धि दिन २ दूनी करता रहे, महाशयों में कोई ऐसा विद्वान नहीं मैं तो एक साधारण पुरुष हूं अवसर में सेठ साहूकारों क लड़कों को अंग्रेजी हिन्दी वाणिक व्योपारिक

विषय तार वगैरह प्राईवेट पढ़ाता हूं और १४ घंटे काम करता हूं अगर कोई त्रुटि हो तो क्षमा करना ।

आपका शुभचिन्तक—

रचयिता मास्टर जवाहरमल शर्मा
शाकद्वीपी ब्राह्मण भोजक
रांगड़ी मोहल्ला
बीकानेर राजपूताना
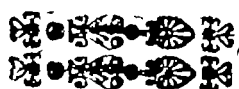
पं० अनन्तराम शर्मा के प्रबन्ध से

सद्धर्म प्रचारक प्रेस देहली में छपा ।

सुजानगढ़ में

पूज्यश्री जवाहिरलालजी महाराज

का

श्वेताम्बर तेरापन्थी लोगों के प्रश्नोंका उत्तर
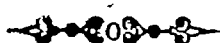
प्रकाशक—

श्रीमानमल सुराणा।

१००० प्रति
प्रथमबार

वीर सम्वत् २४५६
विक्रम सम्वत् १९८६

मूल्य)॥ पैसा

ओ३म्

सुजानगढ़मे

पूज्य श्री जवाहिरलालजी महाराज

का

श्वेताम्बर तेरहपन्थी लोगोंके प्रश्नोंका उत्तर।

सुजानगढ़मे सोमवार तारीख १७-२-३० मिति फाल्गुन कृष्णा ५ सम्वत् १९८६को जबकि पूज्यश्री जवाहिरलालजी महराज, श्रीइन्द्र-चन्द्रजी सिंघीके भवन (बैठक) मे व्याख्यान दे रहे थे और सैकडोंकी संख्यामे स्त्री-पुरुष तथा सनातनधर्मसभाके प्रेसीडेण्ट श्रीलक्ष्मणप्रसादजी आदि आदि अनेकों प्रतिष्ठित सज्जन श्रवण कर रहे थे, उस समय तेरह पन्थ सम्प्रदायके लगभग १५-२० श्रावक जिनमेसे श्रीबालचन्दजी बेगाणी, श्रीहजारीमलजी रामपुरिया, श्री-छोगालालजी चोरड़, श्रीआशकरणजी भूतोड़िया, श्रीमूलचन्दजी सेठिया, श्रीरूपचन्द्रजी बोथरा, श्रीसंच्यालालजी भूतोड़ियाके नाम उल्लेखनीय हैं जिन्होंने आकर पूज्यश्रीसे प्रार्थनाकी कि तेरह पन्थ-सम्प्रदाय और बाईस सम्प्रदायमे जिन बातोंका मतभेद है, हम उन बातो के विषयमे आपसे प्रश्न करना चाहते है। पूज्यश्रीने उक्त प्रार्थनाके उत्तरमे फरमाया कि यह समय व्याख्यानका है। नियमानुसार व्या-ख्यानमे न तो बड़े प्रश्नोत्तर होते ही हैं, न इस थोड़े समयमें प्रश्न सुन

कर उनका समुचित उत्तर देना ही सम्भव है। यदि आप लोग इस विषयमें प्रश्न करना चाहते हैं तो किसी दूसरे समयमें प्रश्नोत्तर करना ठीक होगा। प्रार्थी सज्जनोंने पूज्यश्रीसे फिर कहा, कि हम लोग प्रश्न करनेके लिये आपके समीप किस समय आवें ? पूज्यश्रीने फरमाया कि एक बजेसे तीन बजेतकका समय इसके लिये उपयुक्त होगा, अतः आप लोग उस समयमें प्रश्न पूछ सकते हैं। आये हुए तेरह पन्थ सम्प्रदायके श्रावकोंने पुनः प्रश्न किया कि, क्या हम आजही आ सकते हैं ? पूज्यश्रीने फरमाया—यद्यपि आज सोमवार मेरा मौनका दिन है, तथापि शास्त्र-विषयक प्रश्नोंके उत्तर देनेमें मुझे कोई आपत्ति नहीं।

इस बातचीतके पश्चात व्याख्यान समाप्त हुआ। व्याख्यानमें उपस्थित जनताको इस बातचीतसे मालम हो ही गया था कि, आज एक बजे तेरह पन्थके श्रावकों और पूज्यश्रीमें प्रश्नोत्तर होंगे, अतः दर्शक जनता निश्चित समयके पहिलेसे ही पूज्यश्रीके ठहरनेके स्थानके समीप श्री रामजीके मन्दिर (देवसागर) के पूर्वकी ओरकी छायामें एकत्रित होने लगी। सन्तों सहित पूज्यश्री ठीक एक बजेही जहां जनता एकत्रित थी वहां विराज गये और तेरह पन्थ-सम्प्रदायी श्रावकोंके निश्चित समयके पश्चात् भी न आनेके कारण श्रीगणेशीलाल जी महाराजने ओजस्विनी वाणी द्वारा उपस्थित जनताको ज्ञानोपदेश करना प्रारम्भ कर दिया। डेढ़ बजेके लगभग श्रीझूमरमलजी डोसी, श्रीझूमरमलजी चोरडिया, श्रीबालचन्दजी बेगाणी, श्रीहजारीमलजी मपुरिया, श्रीभंवरलालजी भूतोड़िया, श्रीछोटूलालजी बोरड, श्रीटीक-

मचन्दजी डागा, श्रीआशकरणजी भूतोड़िया, श्रीकुन्दनमलजी सेठिया, श्रीकन्हैयालालजी रामपुरिया, श्रीरूपचन्दजी वोथरा, श्रीमोहनलालजी दोसी, श्रीसंच्यालालजी भूतोड़िया, श्रीहुलासमलजी रामपुरिया, श्रीपन्नालालजी वोरड आदि सुजानगढके सैकड़ों तेरह पन्थ-सम्प्रदायके श्रावक तथा लाडनू वीदासर सरदारशहर और जयपुरके अल्प संख्यक तेरहपन्थी श्रावक, श्रीनेमीनाथजी सिद्ध (जाट, सरदारशहर निवासी) को लेकर आये। तेरहपन्थ-सम्प्रदायी श्रावकोंकी ओरसे नेमीनाथजीने पूज्यश्री से फिर प्रार्थना की कि आपके और हमारे अर्थात् तेरहपन्थके) बीचमें जिन बातोंका मतभेद है हम उन बातोंके विषयमें आपसे कुछ प्रश्न करना चाहते हैं। पूज्यश्रीने फरमाया कि आप लोग जो प्रश्न करना चाहते हैं, वे शास्त्रार्थकी तरह या केवल शंका निवारणके लिये? नेमीनाथजीने पूज्यश्रीके प्रश्नके उत्तरमें कहा कि इन दोनों बातोंका क्या अर्थ है? पूज्यश्रीने फरमाया शास्त्रार्थ तो नियम पूर्वक किसीको मध्यस्थ नियत करके होता है तथा उसमे एक विजयी व दूसरा पराजयी होता है और शंका-निवारणके लिये जो प्रश्न पूछे जाते हैं, उनमे केवल शंकाओंका समाधान करना अभीष्ट होता है। इसमे न तो किसीकी विजय होती है न पराजय और न किसीको मध्यस्थ नियत करनेकी ही आवश्यकता होती है। नेमीनाथजीने कहा हम केवल अपनी शंकाओंके निवारणार्थ प्रश्न करना चाहते हैं। तब पूज्यश्रीने नेमीनाथजीसे प्रश्न किया कि आप व्यक्तिगत प्रश्न पूछना चाहते हैं या तेरहपन्थ समाजकी ओरसे? इस प्रश्नका उत्तर

मूलचन्दजी सेठियाने दिया कि ये (नेमीनाथजी) यहा बैठे हुए तेरहपन्थ समाजकी ओरसे प्रश्न करते हैं। पूज्यश्रीने फिर पूछा कि जिनकी ओरसे नेमीनाथजी प्रश्नकर्त्ता नियत हुए हैं, उन उपस्थित तेरहपन्थ समाजके श्रावकोंकी अनुमानतः कितनी सख्या होगी? इसके उत्तरमें मूलचन्दजी सेठियाने कहा उपस्थित तेरहपन्थ-सम्प्रदायी श्रावकोंको मर्दु मशुमारी (मनुष्य-गणना) तो नहीं है, हम बैठे हुए श्रावकोंकी ओरसे नेमीनाथजी प्रश्न करते हैं। इत्यादि बातें होकर प्रश्नोत्तरके लिये श्री नाजिम साहब सुजानगढ़, श्रीतहसीलदार साहब सुजानगढ़ श्री सरिश्तेदार साहब निजामत सुजानगढ़ आदि प्रतिष्ठित सज्जनों द्वारा यह नियम बनाया गया कि प्रश्नकर्त्ता उपस्थित जनता आदि सबको अपना प्रश्न सुनाकर उन प्रश्नोंको लिखवा दे और इसी प्रकार पूज्यश्रीका जो उत्तर हो, वह भी सबको सुनाया जाकर प्रश्नकर्त्ताको नोट करा दिया जाय। तेरहपन्थ सम्प्रदाय तथा इस ओरसे श्रीनाजिम सा०को शान्तिरक्षाके लिये चुना गया।

नेमीनाथजीने अपना प्रश्न उपस्थित जनता, जो लगभग डेढ़ दो हजार होगी, को सुनाकर श्रीगणेशी लालजी महाराज आदिको नोट कराया, वह निम्न है—

"जो कोई धर्मावलम्बी जैनधर्मको असत्य मानता हुआ अपने धर्मका पूर्ण अनुरागी, वैष्णवधर्मको माननेवाला अपने धर्ममें अनुरक्तता रखता हुआ जप, तप, ब्रह्मचर्य, सत्य, अहिंसा इत्यादिक धर्मका पालन करता है उसका यह उपरोक्त कर्त्तव्य जन्म-मरणकी वृद्धिका हेतु है या घटानेका? उस कर्तव्यसे कर्म बधते हैं या कटते हैं?"

इस प्रश्नका जो उत्तर पूज्यश्रीने उपस्थित लोगोंको सुनाकर प्रश्नकर्त्ताको नोट कराया वह नीचे लिखा जाता है—

"जो पुरुष जैनधर्मको या कोई भीसत्यधर्मको असत्य मानता है वह पुरुष शास्त्रोक्त अहिंसा-सत्य आदिका कदापि पालन नहीं करता है, क्योंकि 'वह सत्य जैन धर्मको असत्य मानता है, ऐसा वादी कायम करता है।* अतएव उस पुरुषके जब शास्त्रोक्त अहिंसा-सत्य आदि व्रत हैं ही नहीं तो फिर उसके अहिंसा-सत्य आदि व्रत पालनेका प्रश्न करना वन्ध्या-पुत्रकी तरह असम्भव है।

तेरह पन्थ-सम्प्रदायकी ओरसे इस उत्तरके खन्डन और अपने प्रश्नके समर्थनके लिये पुनः नेमीनाथजीने निम्न प्रश्न सुनाकर नोट कराया—

"हमारे पूछनेका अभिप्राय यह है कि, जैनेतर जनता सत्य तप

---

*'जैन' शब्द 'जि' धातुसे बना है और 'नक्' प्रत्यय है। जिन शब्दका अर्थ विजय करना या जीतना होता है। अभिप्राय यह कि, राग-द्वेष और काम-क्रोध इत्यादि क्लिष्ट वृत्तियोंका दमन करना 'जिन' शब्दका अर्थ होता है। इसलिये जैन उस धर्मका नाम है, जो क्लिष्ट वृत्तियोंको जीत कर मोक्ष प्राप्त करनेका अभिलाषी हो। बौद्ध और वैष्णवके लिये भी कोषमें 'जिन' शब्दका प्रयोग किया गया है। अतएव जो पुरुष जैन धर्मको असत्य मानता है, वह 'क्लिष्ट वृत्तियोंको दमन करना' यह भी असत्य माननेवाला ठहरता है। ऐसी अवस्थामें उसके अहिंसादि व्रतोंका पालन करना असम्भव बताना ठीक ही है।

—प्रकाशक।

ब्रह्मचर्य अहिंसाका पालन करती है उससे उनका जन्म-मरण घटता है या बढ़ता है ? कर्म कटते हैं या बढ़ते है ? इसका उत्तर आपने कुछ भी न दिया और मेरे प्रश्नको असम्भव बताया। यह तो जब उचित था कि जैन धर्मके सिवाय अन्य धर्मवाले कोई भी सत्य न बोलते हों। किन्तु जैनधर्ममे इसका पुष्ट प्रमाण है कि अन्यधर्म वाले भी सत्यको ग्रहण करते है, जिसका प्रमाण प्रश्न व्याकरणमें देखिये। वह प्रमाण यह है—

अनेग पाखण्ड परिग्गहियं

जिसका यह अर्थ है कि सत्यको अनेक पाखण्डियों ने ग्रहण किया है। इससे सत्य बोलना जैनधर्मानुसार भी अन्यधर्मवालों के लिये प्रमाणित है। तब मेरा प्रश्न सत्यादिके विषयमे असम्भव कैसे हुआ ? और आपने जो 'जैनधर्म के अतिरिक्त कोई भी सत्यधर्मको असत्य मानता है' ऐसा उत्तरमे लिखा है तो वह सत्यधर्म कौनसा है !

इसका जो उत्तर पूज्यश्रीने सुना कर नोट कराया, वह इस प्रकार है—

"प्रश्नकर्त्ता अपने लेखी प्रश्नको भी टालाटूली करके शंकामें लिखता है कि 'हमारा अभिप्राय और था' इत्यादि लिखकर अपना मूल प्रश्न उलटाना चाहता है, परन्तु वह लेखबद्ध होनेसे अब उलट नहीं सकता। जैनेतरके लिये प्रश्न नहीं लिखवाया किन्तु जैनधर्मको असत्य माननेवाले दुराग्रहीके लिये पूछा है। और जो सत्य जैनधर्मका असत्य मानता है, वह अहिंसा सत्य आदि व्रतोंका कदापि पालन नहीं करता है। अतएव प्रथम पूछा हुआ प्रश्न गलत है। वह अपनी गलती

स्वीकार किये, विना प्रश्नकर्त्ता आगे बढ़कर बोलना व मूल प्रश्नको उलटाना कदापि उचित नहीं कहा जा सकता। और जो प्रश्नव्याकरण सूत्रका मूल पाठका अर्थ प्रश्नकर्त्ताने लिखाया है। वह भी प्रश्नकर्त्ताके उस पाठकी टीकाका अज्ञानपना सूचित करता है। जब प्रश्नही गलत है तब उसके विषयमे प्रमाणादिक देने लेने की बातें करना बन्ध्या पुत्रका विवाह करनेकी तरह व्यर्थ है। और मैंने अपने उत्तर मे कोई भी सत्यधर्म को असत्य नहीं लिखा है, उसपर भी 'सत्यधर्म को असत्य आपने अपने उत्तरमें कहा' यह प्रश्नकर्त्ताका कहना अति ही गलत है।"

इन प्रश्नोत्तरमें लगभग ३॥ बज चुके थे, अतः दूसरे दिनके लिये यही समय नियत करके सभा विसर्जित हुई।

दूसरे दिन मंगलवार तारिख १८। ।३० मिती फाल्गुन कृष्ण ६ को फिर कलकी ही तरह कार्य्यारम्भ हुआ। उपस्थिति कल सी ही थी हां, कलकी अपेक्षा आज प्रतिष्ठित सभासदोंमें श्री शेरसिंह जी जज साहब और प्रतिष्ठित तेरह पन्थ-सम्प्रदायी श्रावकोंमें श्रीवृद्धिचन्द जी गोठी सरदारशहर निवासी विशेष थे। नेमीनाथने अपने कलवाले प्रश्नके समर्थनमें जो कुछ लिखकर लाये थे उसे पढ़कर सुनाया और जो कुछ सब को सुनाया गया था, उसे श्रीवृद्धिचन्दजी गोठीने नोट कराया, वह नीचे दिया जाता है

"(क) आपने लिखा है कि प्रश्नकर्त्ता अपने प्रश्नको टालाटूली करके शंकामें लिखता है, जिसके प्रमाण स्वरूप आपने यह वाक्य लिखे हैं कि प्रश्नकर्त्ता मूल प्रश्नमें जैन धर्मको असत्य मानने वाला लिखता

है और अब जैनेतर लिखता है।' मुझे आश्चर्य है कि जिसको साधारण मनुष्य भी समझ सकता है कि जैनधर्मको असत्य माननेवाला निज धर्मका अनुरागी, और 'जैनेतर' ये शब्द एक ही अर्थके वाचक हैं। आपकी इन शब्दोंमें भेद दिखानेकी चेष्टा व्यर्थ है"

"(ख) आपने लिखा है कि, 'प्रश्नकर्त्ता लिखता है कि हमारा अभिप्राय और था परन्तु मैंने 'मेरा अभिप्राय और था' ऐसा कहीं भी नहीं लिखा है। मैंने मेरे द्वितीय प्रश्नमें 'मेरा अभिप्राय यह है' ऐसा लिखा है इसलिये आप मेरा लिखा हुआ 'यह है' के बदले 'ओर था' यह शब्द कहासे ले आये? क्योंकि मैंने 'मेरा अभिप्राय ओर था' ऐसा कहीं नहीं लिखा है। मैंने तो मेरे प्रश्नको स्पष्ट करनेके लिये 'जैनेतर' शब्द दिया है जोकि जैनधर्मको असत्य माननेवाले पर पूर्णरूपसे घटता है। आपने जो मेरे प्रश्नके लिखित वाक्योंके विपरीत लेखनी चलानेकी चेष्टा की है, उन वाक्योंको आप कृपया फिर दुबारा देखिये।"

"(ग) मेरे मूल प्रश्नमे कोई भी सत्यधर्मको असत्य मानता है, ऐसा शब्द नहीं आया है तो फिर आपने उत्तर न० १ मे 'कोई भी सत्यधर्मको असत्य मानता है' ऐसा क्यों लिखा? और उत्तर नं० १ मे उपरोक्त बात लिखकर उत्तर न० २ में फिर आप लिखते हैं कि 'मैंने अपने उत्तरमे कोई भी सत्य धर्मको असत्य नहीं लिखा है' यह परस्पर विरोधी वचन क्यों?"

"(घ) उत्तर न० २ मे जो जैनधर्मको असत्य मानता है, उसको दुराग्रहीकी पदवी आपने दी है। मैंने मेरे प्रश्नमे जैन धर्मको

असत्य माननेवालेके लिये 'दुराग्रही' शब्द नहीं लिखा है। फिर आप मेरे पर असत्य-कलंक क्यों लगाते हैं ? आप चाहे उसको दुराग्रही कहे तो आपकी इच्छा और उसका दायित्व आपके ऊपर है।"

"(ङ) और आपने जो उत्तर नं० २ में लिखा कि 'जो जैन धर्मको असत्य मानता है, वह अहिंसा सत्य आदिका कदापि पालन नहीं करता है' यह आपका लिखना शशक शृंगवत् है, क्योंकि शिवराज ऋषि (जैनधर्म अंगीकार करनेके पहिले) जैनधर्मको असत्य मानता हुआ भी अपने नियमादिमें दृढ़ था। प्रमाण भग० श० ११ उ० ९।"

"(च) आपने उत्तर न० २ मे प्रश्न व्याकरण सूत्रके मूल पाठ की टीकासे प्रश्नकर्त्ताकी अज्ञानता सूचित की है, वह व्यर्थ है; क्योंकि वह टीका मेरे ही प्रमाणके अनुकूल है।"

"अतएव आप जो मेरे प्रश्नको गल्त बताते हैं, वह प्रश्न ठीक है, लेकिन आपकी समझमे ही गल्ती है। इसलिये मेरे प्रश्नका उत्तर मिलना चाहिये।"

उक्त बातोंको सुनाने व नोट करानेके पश्चात् समय बहुत कम रह गया था। पूज्यश्रीने इन बातोंके उत्तरमें जबानी ही ५-७ मिनिटमें कुछ फरमाया, परन्तु समयाभावसे पूरा उत्तर सुनाया जाकर नोट करा देना असम्भव था और गोठीजी तथा नेमीनाथजीको, जो उत्तर आज सुनाया जाय उसे कल नोट करना स्वीकार न था, अतः कलके लिये भी यही समय नियत होकर तीन बजेके लगभग सभा विसर्जित हुई।

तीसरे दिन बुधवार ता० १९-२-३० मिती फाल्गुन कृष्ण ७ को

फिर उसी प्रकार कार्यारम्भ हुआ । जनता आज भी उसी संख्यामें थी । श्रीनाजिम साहब कार्यवश किसी अन्य ग्रामको चले गये थे और उनके स्थानपर श्रीडिस्ट्रिक्ट सुप्रेण्डेण्ट साहब पुलिस सिपाहियों सहित पधारे थे जिन्होंने शान्ति-रक्षाका कार्य अपने हाथमें लिया ।

नेमीनाथजीने अपने प्रश्नके समर्थनमे कल जो बातें सुनाई थीं और गोठीजीने जिन्हें नोट कराया था, उन सम्पूर्ण बातोंका क्रमवार उत्तर तथा भविष्यमें उन मुख्य-मुख्य बातों-जिनमें तेरह पन्थ और बाईस-सम्प्रदायमे मतभेद है—के विषयमें प्रश्नोत्तर होने आदिके लिये जो लेख पूज्यश्रीकी ओरसे तेरह पन्थ-सम्प्रदायी और दर्शक जनता को सुनाकर नोट कराया गया, वह नीचे दिया जाता है—

"(क) आपने जो 'जैन धर्मको असत्य मानने वाला निज धर्मका अनुरागी' और 'जैनेतर' इन शब्दोंको एक ही अर्थका वाचक लिखा है, वह बिलकुल असंगत है। जिन शब्दोंका प्रवृत्ति-निमित्त एक होता है, वेही शब्द एकार्थ वाचक होते हैं, जैसे घट और कलश। क्योंकि इन दोनोंका प्रवृत्ति-निमित्त एक ही घटत्व जाति है। परन्तु 'जैन धर्मको असत्य माननेवाला निज धर्मका अनुरागी' और 'जैनेतर' इनका प्रवृत्ति-निमित्त एक नहीं है। 'जैनेतर' शब्दका प्रवृत्ति-निमित्त जैनोपाधि व्यतिरिक्तोपाधि धारित्व है। यानी 'जैन' इस उपाधिसे भिन्न किसी दूसरी उपाधिका धारण करना है। और 'जैन धर्मको असत्य मानता हुआ निज धर्मका अनुरागी' इसका प्रवृत्ति-निमित्त केवल जैनोपाधि व्यतिरिक्तोपाधि धारित्व नहीं है। किन्तु जो जैन शास्त्रमें विधान की हुई बातोंको एकान्त पाप तथा निषेध की हुई

बातोंमे धर्म मानता हो और इस प्रकारके अपने धर्ममें अनुराग रखता हो यह प्रवृत्ति-निमित्त, है। चाहे वह जैनोपाधि धारी हो क्या न हो जैसे, साधुके गलेमें लगी हुई फांसीको काटना, किसो निर्दोष बच्चेके पेटमें छुरी भोंकते हुएको रोकना, क्रोधित होकर कुए या गड्ढे मे गिरते हुएको बचाना, गायोंसे भरे हुए बाड़ेमें अग्नि लगनेपर दरवाजा खोल कर उनकी रक्षा करना, किसी दीन दुःखीपर अनुकम्पा लाकर उनका दुःख मिटाना इत्यादि जैनशास्त्रमें धर्म और पुण्य रूपमें विधान की हुई बातको एकान्त-पाप बताकर जो निषेध करता है, तथा साधुओंके स्थानमें रातके समय औरतोंका आना और उन्हें व्याख्यान सुनाना, गृहस्थोंके घरसे बारी बांधकर साधुओंका भोजन लाना और विहारमें गृहस्थियोंको साथ रखकर उनके पाससे भोजन लेना आदि जैन-शास्त्र में निषेध की हुई बातका जो विधान करता हुआ तदनुसार आचरण करता है, वह जैन-धर्मको असत्य माननेवाला और निजधर्मका अनुरागी है। पर वह जैनोपाधिधारी होनेसे लोकमें जैनेतर नहीं कहलाता। अतः उक्त दोनों शब्द एकार्थवाची नहीं हैं और मेरा भेद दिखाना उचित ही है॥

"(ख) आपने पत्रके दूसरे लेखमें 'हमारे पूछनेका अभिप्राय यह है' इत्यादि लिखकर जो अपना आशय प्रकट किया है, वह आपके प्रश्न नं० १ के वाक्योंसे नहीं निकलता। क्योंकि यह बताया जा चुका है कि 'जैन धर्मको असत्य—मानने वाला' और 'जैनेतर' यह दोनों शब्द पर्यायवाची नहीं हैं। अतः 'जैनधर्मको असत्य माननेवाला निज धर्मका अनुरागी इस शब्दका 'जैनेतर-जनता'

यह अभिप्राय बतलाना और ही हुआ। इसलिये जो मैंने आपका अभिप्राय और बतलाया है, वह अनुचित नहीं है। अलबत्ता आपने 'और' शब्दका प्रयोग नहीं किया लेकिन यह आर शब्द आपके लिखे हुएका अनुकरण नहीं, बल्कि हमारी तरफसे है और ठीक है। क्योंकि आपका अभिप्राय 'जैनेतर-जनता' लिख कर प्रश्नसे जो आशय प्रकट नहीं होता है, वह बतलाना है।"

"(ग) आपने 'जैन धर्मको असत्य माननेवाला' यह विशेषण ब्रह्मचर्य अहिंसा सत्य आदिके पालन करनेवालेके लिये लगाया है। अतः उसका उत्तर देते हुए मैंने लिखा है कि 'जो पुरुष जैनधर्मको या कोई भी सत्य धर्मको असत्य मानता है, वह पुरुष शास्त्रोक्त अहिंसा सत्य आदिका कदापि पालन नहीं करता है।' इस उत्तरमें मैंने जैन धर्म या कोई भी सत्य धर्मको असत्य बतानेवाला लिखा है, इसमें आपके बताये हुए जैन धर्मको असत्य मानने वाला भी संगृहीत हो गया है। फिर यह आपका आक्षेप करना व्यर्थ है कि 'उत्तर नं० १ में कोई भी सत्य धर्मको असत्य मानना है, क्यों लिखा।' यह आपके प्रश्न-वाक्यका अनुकरण नहीं, किन्तु हमारा उत्तर वाक्य है। विशेषरूपसे पूछे गये प्रश्नोंका सामान्य रूपसे उत्तर दिया जाना भी शास्त्र प्रसिद्ध है।"

"आपके लिखे हुए शब्दसे भिन्न शब्दका लिखना मेरे लिये अनुचित समझते हो तो आपने मेरे उत्तर-वाक्य 'जो पुरुष जैनधर्मको या किसी भी सत्य धर्मको असत्य मानता है' को उद्धृत करते हुए

'जैनधर्मके अतिरिक्त कोई भी सत्य धर्मको असत्य मानता है, इसमें 'अतिरिक्त' शब्द और कहांसे लगा दिया ?"

"(२) 'सत्य धर्मको असत्य मैंने नहीं लिखा' इसका मतलब यह है कि इस लिखनेसे सत्यधर्मको असत्य कहनेका मेरा अभिप्राय नहीं है, किन्तु यह अभिप्राय है कि कोई भी सत्यधर्मको असत्य माने उसमें अहिंसादि व्रतकी प्राप्ति नहीं होती। अब आपका प्रश्न यह है कि 'वह सत्य धर्म कौनसा है' तो इस प्रश्नका उत्तर यह है कि, जिस धर्ममें ज्ञान दर्शन चारित्र और तप यथार्थ रीतिसे माने जाते हों, तथा जो धर्म साधुके गलेमें लगी हुई फांसीको काटने, किसी निर्दोष बच्चेके पेटमें छुरी भोंकते हुएको रोकने, क्रोधित होकर कुएं या गड्ढेमें गिरते हुएको बचाने, जलते हुए बाडेमें रक्षाके लिये गायोंको निकालने आदिमें पाप न मानकर इनका प्रतिपादक हो और रातके समय साधुओंके समीप स्त्रियोंके आने जाने, साधुओंका गृहस्थियोंके यहांसे बारा बार कर भोजन लाने, आदिमें धर्म न मानकर इनका निषेधक हो, वे सब सत्य धर्म हैं, चाहे उनकी उपाधि कुछ भी हो।"

"(५) जैन धर्मको असत्य मानने वाला वह है जो जैन धर्ममें विधान किये हुए मरते प्राणीकी रक्षा और दीन दुःखियोंपर अनुकम्पा लाकर उनके दुःखोंको मिटाना इत्यादि पवित्र कार्यको एकान्त पाप कह कर अपवित्र बतलाता हो। वह चाहे आपके मतमें सत्याग्रही क्यों न हो, पर मैं उसे दुराग्रही मानता हूं और संसार भी उसे दुराग्रही ही कहेगा।"

"(६) शिवराज ऋषि, जैन धर्म स्वीकार करनेके पहले अहिंसा

सत्य आदि व्रतोंका पालन करने वाला था, यह भगवती शतक ११ उद्देशा ९ मे नहीं लिखा है। न जैन धर्मको असत्य मानने वाला ही लिखा है। फिर उनके नियमादिका नाम लेकर जैनधर्मको झूठा मानता हुआ अहिंसा-सत्य आदि व्रतोंका पालन करनेका सम्भव बताना ही शशक शृंगवत् है।"

"(च) प्रश्न व्याकरणसूत्रकी टीकाको जो आपने अपने अनुकूल बताया, यह आपका भ्रम है। वास्तवमें वह टीका, आपने जो अर्थ बताया है उसके सर्वथा प्रतिकूल है, क्योंकि वहां पाखण्डी शब्दका अर्थ व्रतधारी किया है जैसे—

अनेक पाखण्डि परिगृहीतं नाना विध व्रतिभिरङ्गी कृतम्। *

तथा दश वैकालिक सूत्रकी निर्युक्तिमे लिखा है—

पव्वइए अणगारे पासण्डे चरग तावसे भिक्खू।
परिव्वाइये य समणे निग्गन्थे सञ्जए मुत्ते॥ ‡

इसी निर्युक्ति की टीकामें पाखण्डी शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए लिखा हैं—

पाखण्ड-व्रत तदस्यास्तीति पाखण्डी।※

इन सबोंका तात्पर्य यह है कि पाखण्ड नाम व्रतका है और जो

---

* अनेक व्रतधारियोंने सत्य व्रतको स्वीकार किया है।

‡ प्रव्रजित, अणगार, पाखण्ड, चरक, तापस, भिक्षु, निग्रन्थ, सयत, मुक्त, परिव्राजित और श्रमण ये पर्यायवाची शब्द हैं।

※ पाखण्ड नाम व्रतका है। यह व्रत जिसके अन्दर मौजूद हैं, उसे पाखण्डी कहते हैं।

व्रतोंको धारण करता है, वह पाखण्ड या पाखण्डी कहलाता है। ऐसे अनेकों व्रत धारियोसे स्वाकार किया हुआ होनेसे सत्य व्रतको 'अनेक पाखण्ड परिगृहीत' कहा है। निर्युक्तिकारने व्रतधारी-साधुओंके पर्यायमें पाखण्ड शब्दकी गणना की है। वह निर्युक्ति ऊपर लिख दी गई है और उसकी टीकामे पाषण्ड शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए टीकाकारने 'पाखण्ड' व्रतका नाम वताया है। परन्तु 'पाखण्ड' शब्द का और भी अर्थ है। जैसे कि 'पाखण्डी' दाम्भिक यानी ढोंगीका भी नाम है। परन्तु वह पाखण्डी सत्य व्रत धारी नहीं होता, अत यहा वह अर्थ नहीं घटता। इसलिये 'पाखण्डी' शब्दका अर्थ 'व्रत धारी' टीकाकारने किया है, यहापर वहीं उपयुक्त है।"

"अव आपने अपने पहिले नम्बरके प्रश्नको ठीक वतलाते हुए उसका उत्तर मेरेसे मागा है तो, यदि आपका पूछनेका भाव यह हो कि, अहिंसा सत्य आदि व्रतोंका धारण करनेवाला जो जैनसे भिन्न उपाधिधारी पुरुष हो तो वह अपने उक्त व्रतसे संसारको घटाना है या वढाता है तथा अपने कर्मोका क्षय करता है या वृद्धि करता है, तो इसका उत्तर यह है कि वह चाहे जैनोंपाधिधारी हो चाहे किसी दूसरी उपाधिसे विभूषित हो, पर उसके अहिंसा सत्य दि व्रतोके धारण करनेसे जन्म-मरण घटता ही है वढ़ता नहीं है। उसके कर्म क्षीण होते हैं, पर वढते नहीं हैं। इस विषयमे उत्तराध्ययन सूत्र अ० २८ की गाथा प्रमाण है। जैसे कि—

नाण च दंसण चैव चरित्तं च तवो तहा।
एय मग्ग मणुप्पत्ता जीवा गच्छन्ति सुग्गइं॥

अर्थात् ज्ञान दर्शन और अहिंसा सत्यादि व्रतरूप चरित्र मोक्षके मार्ग हैं। इनका आश्रय लिये हुए जीव मोक्ष प्राप्त करते हैं।

इस गाथामें किसी विशेष उपाधिधारीकी चर्चा नहीं करते हुए हर एकका मोक्षगामी होना कहा है। मोक्ष पानेमें, उपाधि विशेष कोई कारण नहीं है। जैसे कि जैन ग्रन्थोंमें लिखा है—

सेयंवरो य आसंवरो य बुद्धो अ अहव अन्नो वा।
समभाव भावि अप्पा लहेइ मुक्खं न सन्देहो ॥

अर्थात् श्वेताम्बर हो या दिगम्बर, बौद्ध हो या शैव, वैष्णवादि अन्य किसी उपाधिका धारी हो, पर समभावसे जिसकी आत्मा भावित है, वह मोक्षको प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं।

इसी आशयके जैन-सूत्रोंके अङ्गोपागोंमे भी पाठ पाये जाते हैं। जैसे कि—

स्वलिङ्गि सिद्धा, अन्यलिङ्गि सिद्धा और गृहलिङ्गि सिद्धा।

अर्थात् अपने लिङ्गमें अन्य लिङ्गमें तथा गृहस्थके लिङ्गमे भी सिद्ध होते हैं।

तथा अश्रुत्वा केवलीके अधिकारमे भगवती सूत्रके अन्दर अन्य लिंगमें भी केवल ज्ञान प्राप्त होना लिखा है।

किसी विद्वानने कहा है कि—

भव बीजांकुर जनना रागाद्याक्षय मुपागता यस्य।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा हरो जिनो वा नमस्तस्मै ॥*

---

* भव-बीजके अंकुरको उत्पन्न करनेवाले रागादि दोष जिनके क्षीण हो गये हैं, वह चाहे ब्रह्मा हो, या विष्णु हो, या हर हो, या जिन हो, उनको नमस्कार है।

इसी तरह यह भी श्लोक है कि—

यं शैवाः समुपासते शिव इति ।‡

यह मेरा उत्तर जो लोग जैनसे भिन्न उपाधिधारी होकर भी अहिंसादि व्रतोंके पालन करनेवाले हैं, उनके सम्बन्धमे है। पर आपने तो जैन धर्मको झूठा माननेवालेके लिये पूछा है, इसपर तो मेरा वही कहना हैं कि, जैन धर्मको असत्य माननेवाला अहिंसादि धर्मोंको भी असत्य माननेवाला है। फिर वह अहिंसादिका पालन भी करता हो, यह बात असम्भव है।"

"हमारा अन्तिम वक्तव्य यह है कि प्रश्नके आरम्भमे जबानी तौर पर तेरहपन्थ-सम्प्रदायकी ओरसे माना गया था कि, जिन-जिन बातोंमे आपके साथ हमारा मतभेद है, उन बातोंका हम प्रश्नोत्तर द्वारा खुलासा करना चाहते हैं। इसके सम्बन्धमे मैंने यह कहा था

---

‡ यं शैवा समुपासते शिव इति ब्रह्मे ति वेदान्तिनो ।
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाण पटवः कर्ते ति नैयायिका ॥
अर्हन्नित्यथ जैन शासन रता कर्मे ति मीमासका ।
सोऽयं वो विदधातु वाछित फलं त्रैलोक्य नाथो हरि ॥

अर्थात्—शैव लोग 'शिव' कहकर जिसकी उपासना करते है, वेदान्ति लोग जिसे 'ब्रह्म' कहते हैं, बौद्ध लोग जिसे 'बुद्ध' कहकर ध्याते हैं, प्रमाण दर्शनमे निपुण नैयायिक लोग जिसे 'कर्ता' बतलाते हैं, जैन-शासनमे रत (जैन) लोग जिसे 'अर्ह' मानते हैं, मीमासक जिसे 'कर्म' बतलाते हैं, वह तीनो लोकका नाथ हरि आपलोगोंके मनोरथको पूर्ण करे।

कि, तेरहपन्थके पूज्य कालूरामजी मेरे साथ शास्त्रार्थ करते तो अति ही उत्तम होता, परन्तु मेरे खुले चेलेंज देनेपर भी शास्त्रार्थ नहीं हुआ। खैर, अब नेमीनाथजी द्वारा आप प्रश्न पूछना चाहते हैं तो भी शान्ति और नियमानुसार प्रश्नोत्तर करनेमे मुझे कुछ भी आपत्ति नहीं है। जो प्रश्न नेमीनाथजीने पूछा और दूसरे रोज नेमीनाथजीकी ओरसे सरदारशहर निवासी तेरहपन्थ-सम्प्रदायके मुखिया श्रावक श्रीवृद्धिचन्दजी गोठीने नेमीनाथजीके प्रत्युत्तरमे जो लिखवाया, उसका उत्तर मेरी ओरसे आज आम सभामें सुनाकर लिखा दिया जाता है। अब आगे व्यर्थ-वाद न बढ़ाकर बाईस-सम्प्रदाय और तेरहपन्थ-सम्प्रदायमे जिन मुख्य-मुख्य बातोंका फर्क है, उन्हींके विषयमे विचार होना चाहिए। वे मुख्य-मुख्य बातें ये हैं—

(१) पंच महाव्रतधारी साधुके गलेमे किसीने फासी लगा दी हो उसको कोई दयावान गृहस्थ खोल देवे तो उसमें बाईस-सम्प्रदायवाले धर्म बतलाते है और तेरहपन्थवाले एकान्त-पाप।

(२) किसी अबोध बच्चेके पेटमे छुरी भोंकते हुए दुष्टोंको रोकने और बच्चेको बचाने की अनुकम्पा करनेमें बाईस-सम्प्रदायवाले धर्म और तेरहपन्थ-सम्प्रदायवाले पाप कहते हैं।

(३) गायोंके वाड़ेमे किसी दुष्टके द्वारा आग लगा देनेपर उन गायोंपर दया करके कोई यदि उस बाड़ेके दरवाजेको खोले अथवा आग लगाते हुएको रोक दे तो, उसमे बाईस-सम्प्रदाय वाले धर्म और तेरहपन्थ वाले एकान्त-पाप बतलाते हैं।

(४) ११ प्रतिमाधारी साधु तुल्य श्रावक कोई निर्दोष आहा-

गदि देवे तो इसमे बाइस-सम्प्रदायवाले धर्म और तेरह पन्थवाले एकान्त-पाप बतलाते हैं।

(५) अगली रात और पिछली रातमें साधुओंके स्थानमें स्त्रियोंके आने-जाने और उन्हें रातमें मकानके अन्दर व्याख्यानादि सुनानेका बाईस-सम्प्रदायवाले निषेध करते हैं और तेरहपन्थवाले विधान।

(६) वागी बाधकर गृहस्थोंके यहासे भोजन लाना और रास्तेमें अपने साथ सेवार्थ गृहस्थोंको रखना और उनसे भोजन लेना, इनका बाईस-सम्प्रदायवाले निषेध और तेरहपन्थवाले विधान करते हैं।

(७) साध्वियोंके साथ विना कारण आहार पानी आदिके लेने-देने आदिका बाईस-सम्प्रदायवाले निषेध और तेरहपन्थवाले विधान करते हैं।

इन बातोंका खुलासा होना चाहिये। *

---

* नोट—तेरहपन्थ और बाईस-सम्प्रदायमे मतभेदके जो मुख्य-मुख्य विषय ऊपर बताये गये हैं, वे यथार्थ हैं। परन्तु जनताको भ्रममें रखनेके लिये तेरह पन्थी लोग प्राय: मतभेदके बातोंकी असलियतको तो छिपा रखते हैं और इन बातोंके लिये यद्वा-तद्वा कहकर टालटुलो कर देते हैं। इसलिये मतभेदकी बातोंके विषयमे हमारी सूचना है कि, यदि तेरहपन्थ- सम्प्रदायी लोग साधुके गलेकी फासीको गृहस्थके खोलने आ[illegible]. बातोंमे पाप न मानते हों तो फिर वे 'इन कामोंमे हम धर्म मानते है, ऐसा स्पष्ट स्वीकार करके प्रसिद्ध कर दें, जिसमें तेरहपन्थ और बाईस

इस उत्तरादिके सुनाते समय तेरह पन्थ-सम्प्रदायी लोगोने हो-हल्ला मचाना प्रारम्भ और शान्तिभङ्गकी चेष्टा अवश्य की, लेकिन श्री डिस्ट्रिक्ट सुप्रेण्टेण्डेण्ट साहब पुलिसके प्रशंसनीय प्रबन्धसे वे लोग इसमें असफल रहे।

सुनाये जानेके पश्चात-जब कि टीकमचन्दजी डागा व नेमीनाथ-जी, इन दोनोको सुनाया हुआ उत्तर नोट कराया जा रहा था—तेरह पन्थ-सम्प्रदायवालाने सुप्रेण्टेण्डेण्ट साहब पुलिससे इस उत्तरके खण्डन और अपने पक्षके समर्थनके लिये अगले रोज फिर सभा होनेके विचार प्रकट किये। उनके विचारोको सुनकर पूज्यश्रीने सुप्रेण्टेण्डेण्ट साहबसे फरमाया कि, मैंने एक ही प्रश्नका उत्तर तीन रोजतक दिया, परन्तु प्रश्नकर्त्ता हठवश यही कहते हैं कि हमारे प्रश्न का उत्तरनही मिला। इतना ही नहीं कहते बल्कि इसके साथही अस-भ्यताके शब्दों का भी प्रयोग कर जाते हैं। जैसे उनका यह कहना कि,

---

सम्प्रदायमे मतभेद न रहकर एकता रहे। अन्यथा यह वार्ता स्वयं सिद्ध है कि तेरहपन्थ-सम्प्रदायवाले, जो बातें ऊपर बताई गई है उन्हें उसी रूपमे मानते हैं। इसके सिवाय तेरह पन्थ-सम्प्र-दायके प्रकाशित ग्रन्थोंसे भी इन बातोंका इसी रूपमे माना जाना सिद्ध है। यदि तेरह पन्थ-सम्प्रदाय वाले यह कहते हों कि हमारे ये सिद्धान्त शास्त्रानुमोदित हैं तो उनके पूज्य कालूरामजी बाईस-सम्प्रदायके पूज्य जवाहिरलालजीसे शास्त्रार्थ करें जिसमे सर्व-साधारणका सन्तोष हो जाय।

—प्रकाशक।

'आपने अपने उत्तरमे हमें गालियें लिखी हैं'. आदि अतः यदि प्रश्न-कर्त्ता मेरे उत्तरसे असंतुष्ट हैं और मेरे उत्तरको अपने प्रश्न-का उत्तर नहीं समझते हैं तो, कल दोनों ओर से किसीको मध्यस्थ नियत कर दिया जाय जो मेरे उत्तर और इनके प्रश्नको गलत सही-का निर्णय देसके। इसके सिवाय यदि तेरहपन्थ सम्प्रदाय वाले शास्त्रार्थ करना चाहते हों तो, नियमानुसार किसीको मध्यस्थ नियत करके शास्त्रार्थ हो जाय। तेरहपन्थके पुज्य कालूरामजी या जो मुझसे शास्त्रार्थ करनेके योग्य हो, उससे मैं शास्त्रार्थ करने को तैयार हू। आपलोगोंका, जनताका और मैं अपना स्वयका इस प्रकार अकारण समय नष्ट नहीं करना चाहता।,

पूज्यश्रीके फरमानेको सुनकर सुप्रेण्टेण्डेन्टसाहबने तेरहपन्थ-सम्प्र दाय वालोसे प्रश्न किया कि आप लोग मध्यस्थ नियत करके जो प्रश्नो त्तर हुए हैं उनका निर्णय कराना चाहते हैं या शास्त्रार्थ! लेकिन तेरह पन्थ-सम्प्रदायकी ओरसे श्रीवृद्धिचन्दजी गोठी, श्रीमूलचन्दजी सेठि-या, श्रीछोटूलालजी बोरड, श्री बालचन्दजी बैगाणी, श्रीआशकरणजी भूतेडिया, आदि ने इन दोनों बातोमेंसे किसी भी एकको स्वीकार नहीं किया। अत. ३। बजेके लगभग सभा विसर्जित हुई।

इन प्रश्नोतरो को सर्वसाधारण की सूचनाके लिये हम प्रकाशित किये देते हैं, जिसमें तेरहपन्थ-सम्प्रदायके लोग कोई भ्रमोत्पादक बात न फैला सकें।

अन्तमें हम श्रीरघुवरदयाल सिहंजी नाजिम साहब, श्रीशेरसिहंजी जजसाहब, श्रीडिस्ट्रिक्ट सुप्रेण्टेन्डेण्ट साहब पुलिस, श्रीहजारीसिहंजी

तहसीलदार साहब और श्रीलक्ष्मणप्रसादजी प्रेसीडेण्ट सनातनधर्म सभाको उनके निष्पक्ष शान्तिरक्षा और परिश्रमके लिये धन्यबाद देते हैं। इस कार्य में पण्डित अम्बिकादत्तजी ओझा और पण्डित शंकरप्रसादजी दीक्षितने भी प्रशंसनीय परिश्रम किया है, अतः वे भी धन्यवादके पात्र हैं।

—o—

परदेशी राजा

प्रकाशक—

शुभ-संवाद

१२सौ पृष्ठ का ग्रन्थ १) रु० में

यह जानकर किस धर्म्म-प्रेमी को खुशी न होगी कि पूज्य जवाहिराचार्य्य विरचित "सद्धर्म-मण्डन" नामक ग्रन्थ को "जीवन-ग्रन्थ-माला" ने घर-घर पहुंचाने का संकल्प कर लिया है।

पुस्तक का शुद्ध संस्करण निकालने के लिये माला ने विद्वान् पण्डितो को रक्खा है, पुस्तक की सफाई छपाई का खास खयाल रक्खा गया है। अब भी यही पुस्तक २॥) रु० मे मिलती है। "जीवन-ग्रन्थ-माला" का यह संस्करण शुद्ध और पहले से कुछ अधिक पृष्ठो मे निकाला जावेगा।

पुस्तक उतनी तादाद मे छपाई जावेगी जितने कि हमारे पास आर्डर आजावेगे इसलिये जिन महानुभावो को आवश्यकता हो वे पहले ही से आर्डर भेजदें ताकि पीछे से पछताना न पड़े। माला के स्थायी ग्राहको तथा वितीर्ण करने वालो को १) में और अन्य लोगों को १॥) मे मिलेगी, ऐसा सुयोग्य अवसर हाथ से न जाने दीजिये। हमारा यह दावा है कि इतना सस्ता और सुन्दर ग्रन्थ आपको संसार मे कोई भी प्रकाशक न दे सकेगा। १२ सौ से भी अधिक पृष्ठ का मूल्य केवल १) रु० है।

माला का उद्देश्य धन कमाना नहीं, बल्कि प्रचार करना है।

संचालक—

पंडित छोटेलाल यति,

जीवन-कार्य्यालय, अजमेर.

जीवन ग्रन्थमाला का प्रथम पुष्प।

परदेशी राजा

लेखक—

पं० भजामिशंकरजी दीक्षित

प्रकाशक—

जीवन कार्य्यालय,
अजमेर

प्रथमावृत्ति 1500 | सन् 1933 ई० | मूल्य ।=) आना

हमारी शीघ्र ही प्रकाशित होने वाली पुस्तक

"पाप से बचो"

जैन समाज में घोर क्रान्ति मचाने वाला एक आध्यात्मिक ग्रन्थ का निर्माण पं० भजामिशंकरजी की लोह लेखनी द्वारा हुआ है।

पं० जी की पुस्तकें जिन सज्जनों ने पढ़ी हैं वे भली-भाँति यह जानते हैं कि उनमें हृदय को उठाने की पर्याप्त सामग्री है। इस पुस्तक में १८ पापों का निरूपण और उनसे बचने के उपायों का दार्शनिक दृष्टि से विवेचन किया गया है। जो विद्वान् इसे पढ़ेंगे वे अवश्य इस पुस्तक की मुक्त कंठ से प्रशंसा करेंगे। पुस्तक पढ़कर शायद ही कोई ऐसा जैन अथवा जैनेतर हो जो इन पापों से घृणा करके पुण्य कार्य में प्रवृत्त न हो जाय, पाप से बचने के लिये इस पुस्तक का पढ़ना अत्यन्त आवश्यक है।

संचालक।
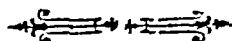
परदेशी राजा

एक बार, जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र की आमलकप्पा नामक नगरी के अंबशाल नामक वन में भगवान् महावीर स्वामी अपने 14000 साधुओं तथा 36000 साध्वियों के साथ विराजमान हुए। भगवान् का पधारना जानकर, नगर के सभी लोग बाग़ में आये और भगवान् के उपदेश को श्रवण करने लगे। इसी समय, प्रथम सौधर्म नामक देवलोक के सूर्याभ नामक विमान से, सूर्याभदेव अपनी रिद्धि-सिद्धि तथा अपने चार हज़ार सामानिक देवों तथा हज़ारों देवियों और सोलह हज़ार अंगरक्षकों के साथ भगवान् के दर्शन करने आया और प्रदक्षिणा, वन्दन आदि कार्य करके सभा में बैठ गया तथा अन्य लोगों की तरह उपदेश श्रवण करने लगा।

उपदेश की समाप्ति पर सब लोग जब वन्दना-नमस्कार करके अपने अपने घर चले गये, तब सूर्याभदेव ने भगवान को वन्दन करके ३२ प्रकार के नाटक किये और फिर विधिवत् वन्दन-नमस्कार करके, अपने साथियों सहित वापस अपने लोक को लौट गया।

सूर्याभदेव के लौट जाने पर श्री गौतम स्वामी ने भगवान् से पूछा, कि—हे भगवन्! यह सूर्याभदेव महान् ज्योतिवाला और बड़ा भाग्यवान् है। इसे, इतनी श्रेष्ठ ऋद्धि-सिद्धि और ऐसा बड़प्पन कैसे प्राप्त हुआ? यह पूर्व भव में कौन था? इसका गोत्र क्या था और यह किस ग्राम का रहनेवाला था? क्या दान देकर, क्या खाकर और क्या आचरण करके अथवा किस श्रमण माहण से आर्यधर्म श्रवण करने से इसको यह पद प्राप्त हुआ है?

श्री गौतम स्वामी का प्रश्न सुनकर, श्रमण भगवान् महावीर ने सूर्याभदेव के पूर्वभव की कथा उन्हें कह सुनाई। यही कथा, आधुनिक तर्कवितर्कों से युक्त करके आगे लिखी जाती है।

इसी जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में केकयार्ध नामक देश था। इस देश में, सेयविया नामक एक ऋद्धि-सिद्धि से परिपूर्ण नगरी थी। इस सेयविया नगरी में, परदेशी नामक राजा राज्य करता था। यह, बड़ा अधर्मी और अधर्म द्वारा अपनी

जीविका चलाने वाला था। परलोक का भय इसे किंचित् भी न था। यह स्वभाव से अत्यन्त प्रचण्ड, क्षुद्र और भयङ्कर था। इसके हाथ सदैव रक्त से भरे रहते थे। शील, व्रत, क्षमा, मर्यादा, प्रत्याख्यान पौषधोपवास आदि शुभ कार्यों से यह सदा दूर रहता था। सदैव बहुत से द्विपद, चतुष्पद, मृग, पशु, पक्षी आदि जीवों के वध करने और अधर्म-कार्य करने में प्रसन्नता अनुभव करता था। अपने गुरुजनों और वृद्धजनों का सम्मान सत्कार भी नहीं करता था * और न उनका विनय ही करता। प्रजाजनों पर, उसने नाना प्रकार के टैक्स लगा रखे थे, जिन के बोझ से प्रजा दबी जाती थी। टैक्सों के अतिरिक्त, यह अन्य भी अनेक प्रकार के कष्ट प्रजाजनों को देता था।

इसी राजा परदेशी के यहाँ, चित्तसारथी नामक एक बुद्धिमान कार्यकर्ता था, जो राजा के बड़े भाई की तरह सब कार्य करता था। यह व्यक्ति, वयस्क, बुद्धिवान् और बड़ा विजयी था। साम, दण्ड और भेद तीनों प्रकार के दण्ड राज-नीति लोकनिति, अर्थनिति आदि नीतियों और चारों प्रकार की बुद्धियों से युक्त था। परदेशी राजा के, राज्य सम्बन्धी, परिवार सम्बन्धी, गुप्त रहस्यों और व्यवहार सम्बन्धी कार्यों

* गुरुजनों का सत्कार न करना शास्त्रकारों ने अधर्म की गणना में लिया है।

में वह सदैव सलाह दिया करता था। राजा तथा प्रजा, दोनों के लिये वह स्तम्भ की तरह आधारभूत था। उसे, सब स्थानों में, यहाँ तक कि अन्तःपुर में भी प्रवेश करने की आज्ञा थी। राज्यकार्य में, वह ख़ूब दिल लगा कर कार्य करता था।

इन दिनों, कुणाल देश में श्रावस्ती नामक एक ऋद्धि-सिद्धि से परिपूर्ण नगरी थी। इस नगरी में, परदेशी राजा का आज्ञाकारी जितशत्रु नामक राजा राज्य करता था। यह भी बड़ा वीर और प्रभावशाली था।

एक बार, परदेशी राजा ने अत्यन्त मूल्यवान, बड़ी अच्छी और उपयोगी भेंट, राजा जितशत्रु को भेजने के लिये तैयार की और चित सारथी को बुला कर उसे वह भेंट सुपुर्द करके कहा, कि तुम इसे लेकर राजा जितशत्रु के यहाँ जाओ। वहाँ यह भेंट उन्हें देकर, राजकीय गुप्त-कार्यों और व्यवहार कार्यों में उनसे मन्त्रणा करना। यों कह कर, राजा परदेशी ने उन्हें अनेक विचारणीय विषय समझाये और विदा कर दिया।

भेंट लेकर, चितसारथी अपने घर आये और अपने परिवार के लोगों को रथ तैयार करने की आज्ञा दी। जब तक परिवार के लोगों ने रथ तैयार किया, तब तक चितसारथी ने स्नानादि कृत्यों से निवृत हो, शरीर पर कवच धारण किये और बहुमूल्य वस्त्राभरणों से अपने शरीर को सजाया। फिर, हाथ में हथियार ले, अपने साथी अगरक्षकों सहित उस

मूल्यवान भेंट को रथ में रख कर सवार हुआ और श्रावस्ती की ओर चल दिया। मार्ग में, अनेक रमणीय-स्थलों को देखता हुआ, और विश्राम करता हुआ चित्तसारथी, कुणाल देश के मध्य श्रावस्ती नगरी पहुँचा। राजद्वार पर पहुँच कर वह भेंट सहित रथ से नीचे उतरा और राजा के सन्मुख पहुँच कर, उन्हें अभिवादन किया तथा वह मूल्यवान भेंट उनके सन्मुख रख दी। भेंट लेकर, राजा ने चित्तसारथी से परदेशी राजा के कुशल-समाचार पूछे और फिर सम्मान-पूर्वक चित्त को, राजमार्ग के एक महल में निवास कराने का प्रबन्ध किया।

राजा से निवास पाकर, चित्तसारथी फिर अपने रथ में आ बैठे और श्रावस्ती नगरी का अवलोकन करते हुए उस महल में आये। वहाँ आकर, उन्होंने नित्यकर्म किये और भोजन करने के पश्चात्, तीसरे पहर में गन्धर्वों और नटों के नाटक देखने तथा गायन सुनने लगे।

इसी समय में, श्री पार्श्वनाथ स्वामी के प्रतिशिष्य ज्ञान-दर्शन, और चारित्र के सागर, ओजस्वी तेजस्वी और यशस्वी, परिषहों को जीतने वाले, मृत्यु के भय से रहित, चौदह पूर्व और चार ज्ञान के धारण करने वाले, श्री केशी-कुमार नामक महामुनि, अपने पाँचसौ शिष्यों सहित, सुख पूर्वक विचरते हुए, श्रावस्ती नगरी के कोष्टक नामक उद्यान

में वह सदैव सलाह दिया करता था। राजा तथा प्रजा, दोनों के लिये वह स्तम्भ की तरह आधारभूत था। उसे, सब स्थानों में, यहाँ तक कि अन्तःपुर में भी प्रवेश करने की आज्ञा थी। राज्यकार्य में, वह ख़ूब दिल लगा कर कार्य करता था।

इन दिनों, कुणाल देश में श्रावस्ती नामक एक ऋद्धि-सिद्धि से परिपूर्ण नगरी थी। इस नगरी में, परदेशी राजा का आज्ञाकारी जितशत्रु नामक राजा राज्य करता था। यह भी बड़ा वीर और प्रभावशाली था।

एक बार, परदेशी राजा ने अत्यन्त मूल्यवान, बड़ी अच्छी और उपयोगी भेंट, राजा जितशत्रु को भेजने के लिये तैयार की और चित सारथी को बुला कर उसे वह भेंट सुपुर्द करके कहा, कि तुम इसे लेकर राजा जितशत्रु के यहाँ जाओ। वहाँ यह भेंट उन्हें देकर, राजकीय गुप्त-कार्यो और व्यवहार कार्यों में उनसे मन्त्रणा करना। यों कह कर, राजा परदेशी ने उन्हें अनेक विचारणीय विषय समझाये और विदा कर दिया।

भेंट लेकर, चितसारथी अपने घर आये और अपने परिवार के लोगों को रथ तैयार करने की आज्ञा दी। जब तक परिवार के लोगो ने रथ तैयार किया, तब तक चितसा-रथी ने स्नानादि कृत्यों से निवृत हो, शरीर पर कवच धारण किये और बहुमूल्य वस्त्राभरणा से अपने शरीर को सजाया। फिर, हाथ मे हथियार ले, अपने साथी अंगरक्षकों सहित उस

मूल्यवान भेंट को रथ में रख कर सवार हुआ और श्रावस्ती की ओर चल दिया। मार्ग में, अनेक रमणीय-स्थलों को देखता हुआ, और विश्राम करता हुआ चितसारथी, कुणाल देश के मध्य श्रावस्ती नगरी पहुँचा। राजद्वार पर पहुँच कर वह भेंट सहित रथ से नीचे उतरा और राजा के सन्मुख पहुँच कर, उन्हें अभिवादन किया तथा वह मूल्यवान भेंट उनके सन्मुख रख दी। भेंट लेकर, राजा ने चितसारथी से परदेशी राजा के कुशल-समाचार पूछे और फिर सम्मान-पूर्वक चित को, राजमार्ग के एक महल में निवास कराने का हुक्म दिया।

राजा से निवास पाकर, चितसारथी फिर अपने रथ में आबैठे और श्रावस्ती नगरी का अवलोकन करते हुए उस महल में आये। वहाँ आकर, उन्होंने नित्यकर्म किये और भोजन करने के पश्चात्, तीसरे पहर में गन्धर्वों और नटों के नाटक देखने तथा गायन सुनने लगे।

इसी समय में, श्री पार्श्वनाथ स्वामी के प्रतिशिष्य ज्ञान-दर्शन, और चारित्र के सागर, ओजस्वी तेजस्वी और यशस्वी, परिषदों को जीतने वाले, मृत्यु के भय से रहित, चौदह पूर्व और चार ज्ञान के धारण करने वाले, श्री केशी-कुमार नामक महामुनि, अपने पाँचसौ शिष्यों सहित, सुख पूर्वक विचरते हुए, श्रावस्ती नगरी के कोष्टक नामक उद्यान

में पधारे। मुनिवर का पधारना जानकर, नगर निवासियों के झुण्ड के झुण्ड दर्शनार्थ चल पड़े। राजमार्ग पर, इन लोगों को भीड़ के कारण बड़ा कोलाहल होने लगा। इस शोरगुल को सुन कर, चितसारथी अपने हृदय में विचार करने लगा, कि आज श्रावस्ती नगरी में ऐसा कौन-सा उत्सव है जिसके लिये छोटे-बड़े, अमीर उमराव आदि सभी लोग सवारियों पर चढ़-चढ़ कर या पैदल ही चले जा रहे हैं? अपनी इस जिज्ञासा की तृप्ति के लिये, उसने पता लगाने वाले पुरुषों को अपने पास बुलाया और उनसे कहा, कि आज कौनसा उत्सव है, जिस के लिये सब लोग शीघ्रतापूर्वक और हर्षसहित जा रहे हैं, इसका पता शीघ्र लगाओ?

चितसारथी की आज्ञा पाकर, सेवकगण बाहर आये और निश्चयपूर्वक पता लगा कर, फिर वहीं लौट गये। वहाँ पहुँच कर उन्होंने चित से प्रार्थना की, कि—हे देवानुप्रिय श्रावस्ती नगरी में आज कोई ख़ास महोत्सव नहीं है, जिसके लिए ये लोग जा रहे हों। बल्कि, श्री पार्श्वनाथ स्वामी के प्रतिशिष्य, अनेक गुणों से युक्त श्री केशीकुमार श्रमण यहाँ पधारे हैं, जिनके दर्शन करने के लिये ही ये सब लोग शीघ्रतापूर्वक जारहे हैं।

सेवकों के मुख से, श्रीकेशीकुमार श्रमण का पधारना सुन कर, चतिसारथी अपने हृदय में बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने

अपने साथियों को रथ तैयार करने की आज्ञा दी। इसके पश्चात्, चित तैयार हुआ और चार घोड़ों वाले रथ पर अपने साथियों सहित सवार होकर, कोष्टक उद्यान में आया। उद्यान के समीप पहुँच कर, वह रथ से नीचे उतरा और नम्रतापूर्वक श्री केशीश्रमण के पास गया। पास पहुँचकर; उसने श्रीकेशीश्रमण की तीन-वार प्रदक्षिणा की ? इसके बाद विधिवत् प्रणाम-नमस्कार करके, विनयपूर्वक मुनि की सेवा में बैठ कर उपदेश श्रवण करने लगा।

श्री केशीकुमार श्रमण ने, वहाँ उपस्थित सभा के सन्मुख चार व्रत रूप धर्म का उपदेश दिया। उपदेश की समाप्ति पर, सब लोग वन्दना-नमस्कार करके, प्रसन्न होते हुए अपने-अपने घर की ओर चल दिये। लोगों के चले जाने पर, चित सारथी उठा और तीन वार प्रदक्षिणा तथा प्रणाम करके श्री केशीकुमार श्रमण से बोला—हे भगवन्! मुझे निर्ग्रन्थ के वचनों से रुचि और उन पर श्रद्धा है। आपने अभी जो अमृत-तुल्य उपदेश दिया है, उस पर मुझे पूर्ण विश्वास है। वह सत्य है, संशय रहित है। हे नाथ! जिस प्रकार बड़े २ धनी मानी, कुलीन और राज्य पाट के स्वामी, अपना-अपना वैभव, द्रव्य और परिवार का परित्याग करके, उसकी निन्दा करते हुए या उसका दान देकर आपसे दीक्षा ग्रहण करते हैं, उस प्रकार से अपनी सम्पत्ति तथा परिवार को छोड़कर दीक्षा ग्रहण करने में मैं सर्वथा असमर्थ हूँ। मै, आपसे पांच अणुव्रत और सात

शिक्षा व्रत, इस तरह बारह प्रकार का गृहस्थ-धर्म अंगीकार करना चाहता हूँ। यों कहकर, चितसारथी ने, फिर वन्दन-नमस्कार किया।

चित सारथी की यह प्रार्थना सुनकर, श्री केशीकुमार श्रमण ने कहा—अहो देवानुप्रिय! जिससे तुम्हें सुख हो, वही करो। यदि तुम गृहस्थ-धर्म अंगीकार करना चाहो, तो इस कार्य में ज़रा भी देर न करो।

श्री केशीकुमार श्रमण का यह कथन सुनकर, चितसारथी ने उनसे पाँच अणुव्रत और सात शिक्षा रूप व्रत, इस तरह बारह प्रकार के गृहस्थ धर्म अंगीकार किये। इसके बाद, पुन विधिवत् वन्दना नमस्कार कर, अपने रथ पर सवार हो वह अपने निवास पर लौट आया। इस अवसर से चित्त, श्रमणोपासक तथा जीव अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष का जानने वाला होगया। इसके बाद, उसने अपनी सारी शंकाओं का समाधान किया। कुछ ही समय में उसकी हड्डी-हड्डी तथा नस-नस मे प्रेमानुराग* भर गया। वह, जब और लोगों से मिलता, तो उनसे कहता था—हे बन्धु! ये निर्ग्रन्थों के वचन ही इस संसार में सार्थक हैं, शेष सारी बातें निरर्थक ही जानो।

---

* राग के दो भेद हैं, एक प्रशस्त दूसरा अप्रशस्त, पहला ग्रहण किया जा सकता है दूसरा नहीं, राग एकान्त पूरा नहीं है।

अब चित सारथी, चतुर्दशी, अष्टमी, पूर्णिमा और अमावस्या में प्रत्येक उत्तम-तिथि को सम्पूर्ण पौषध करने लगा। उसका अन्तःकरण, स्फटिक-मणि के समान उज्ज्वल और चरित्र पर्वत की तरह दृढ होगया। लोगों के हृदय में, उसके प्रति ऐसा उत्तम विश्वास होगया, कि वह जहाँ भी चाहे, चला जा सकता था। यहाँ तक, कि वह राजा के अन्त पुर में भी प्रवेश कर सकता था। साधु-महात्माओं पर उसकी प्रगाढ़ श्रद्धा थी। उन्हें, शुद्ध, आहार-पानी और वस्त्रादि दान देने में वह अलौकिक सुख का अनुभव करता था। शील-व्रत, गुणव्रत आदि विविध प्रकार के व्रतों का पालन करता हुआ, वह जितशत्रु राजा से राजकीय विषयों पर सलाह-मशविरा करता रहता था।

इसी तरह कुछ दिन बीत जाने पर, एक बार जितशत्रु राजा ने अत्यन्त मूल्यवान भेंट तैयार की और चितसारथी को अपने पास बुलाकर, उसे वह भेंट सौंपते हुए कहा, कि— तुम मेरी तरफ से यह भेंट लेकर सेयविया नगरी जाओ और परदेशी राजा की सेवा में इसे अर्पण करो। मेरी तरफ़ से, परदेशी राजा को प्रणाम करना और जो-जो बात चीत मेरे और तुम्हारे बीच हुई हैं, वह सब उन्हें कह सुनाना। यों कहकर, श्रावस्ती नरेश जितशत्रु ने, चित सारथी को सम्मान पूर्वक विदा कर दिया।

राजा को अभिवादन कर, उस मूल्यवान भेंट को लिये हुए चितसारथी अपने निवास को लौट आया। वहाँ आकर

वह भेंट रख दी और स्नानादि कार्यों से निवृत्त हो,वस्त्राभूषण पहन, अपने साथियों को लिये हुए, वह पैदल चल कर श्री केशीकुमार श्रमण की सेवा में उपस्थित हुआ। वहाँ, मुनिराज की प्रदक्षिणा तथा उन्हें विधिवत् प्रणाम करके, वह साथियों सहित धर्म सुनने लगा। धर्म सुन चुकने पर उठकर खड़ा हुआ और हाथ जोड़कर नम्रता पूर्वक बोला—अहो भगवन्! जित शत्रु राजा ने, राजा परदेशी के लिये एक मूल्यवान भेंट देकर मुझे बिदा कर दिया है, इसलिये अब मैं सेयविया नगरी को जाता हूँ। हे स्वामिन्! सेयविया नगरी अत्यन्त प्रसन्नकारी, दर्शनीय और चित्त को मोह लेने वाली है। इसलिये हे नाथ! आप दया करके वहाँ पधारिये।

श्री केशीकुमार श्रमण ने, चित सारथी की यह प्रार्थना सुनी और मौन रहे। तब, चित ने दो-तीन वार पुन. सेयविया नगरी पधारने को प्रार्थना की। उसका अधिक आग्रह देखकर श्री केशीकुमार श्रमण ने कहा—हे चित! जो वन अंधियारा सा हो, उसमें क्या मृगादि पशु तथा पक्षीगण आ सकते हैं? चित ने हाथ जोड़कर कहा—हाँ महाराज, आ सकते हैं। श्री केशीकुमार श्रमण ने फिर पूछा, कि—यदि उस वन में बहुत से मलेच्छ जाति के पापी मनुष्य रहते हों, जो उन पशु-पक्षियों को मारकर खा जाने के लिये तत्पर हों, तो क्या वे पशु पक्षी उस वन में जाना पसन्द करेंगे? चित ने उत्तर दिया नहीं

भगवन् ! वे ऐसी दशा में उस वन में आना कदापि पसन्द न करेंगे।

चित का उत्तर सुनकर, श्री श्रमण फिर बोले—अहो चित ! तुम्हारी सेयविया नगरी का राजा परदेशी अत्यन्त क्रूर और प्रजापीड़क है। ऐसी दशा में तुम्हीं बतलाओ, कि मैं सेयविया नगरी को कैसे आ सकता हूँ ?

चित ने कहा—स्वामिन् ! आपको परदेशी राजा से क्या मतलब है ? सेयविया नगरी में, बड़े-बड़े आस्तिक और निर्ग्रन्थ के वचनों पर श्रद्धा रखने वाले प्रमुख व्यक्ति रहते हैं। वे लोग आपका धर्मोपदेश श्रवण करेंगे, आपकी भक्ति में तल्लीन रहेंगे और आपको आहार पानी तथा वापस लौटाने के योग्य पाट, शैय्या आदि देने में प्रसन्नता मानेंगे। इसलिये, आप अवश्य ही एक बार वहाँ पधारिये।

चित की इस प्रार्थना के उत्तर में, श्री केशीकुमार श्रमण ने फ़रमाया, कि यदि अवसर होगा, तो उस तरफ़ विहार करूँगा। तत्पश्चात्, चित सारथी ने श्री श्रमण को विधिवत् प्रणाम किया और वापस अपने राजमार्ग वाले निवास पर लौट आया। वहाँ आकर, उसने अपने साथियों से कहा, कि शीघ्र ही मेरा रथ तैयार करो।

रथ तैयार होने पर, चित अपने साथियों सहित उसमें सवार हुआ और शान्तिपूर्वक चलता-चलता, सीधा सेयविया

नगरी के मृगवन नामक उद्यान में आया। वहाँ पहुँच कर, उसने उस बाग़ के माली को बुलाया और उससे कहा, कि जब श्री पार्श्वनाथ स्वामी के प्रति शिष्य श्री केशीकुमार श्रमण यहाँ पधारें, तब तुम बन्दना नमस्कार करना और उन्हें बाग़ में विराजने की स्वीकृति देकर, उनको आवश्यकता की चीज़ें, जैसे पाट, शैय्या आदि देने के लिये आमन्त्रित करना। चित का यह कथन सुनकर, माली अपने हृदय में अत्यन्त प्रसन्न हुआ और हाथ जोड़कर कहने लगा कि जैसी श्रीमान् की आज्ञा।

इसके पश्चात्, चित सारथी सेयविया नगरी मे गया और परदेशी राजा के महल पर पहुँचकर, रथ से वह भेंट उतारी। उसको लिये हुए, वह परदेशी राजा के सन्मुख उपस्थित हुआ और अभिवादन करके, वह भेंट सन्मुख रख दी। परदेशी राजा ने इस भेंट को स्वीकार करके, चित का बडा सम्मान किया। राजा से, सम्मान पूर्वक बिदा होकर, चित अपने घर लौट आया और पुन. गृहस्थी के कार्यों में लग गया। अस्तु।

उधर श्रावस्ती नगरी में विराजमान श्री केशीकुमार श्रमण ने, एक दिन सब पाट-शैय्या आदि वस्तुएँ जिसकी तिस को लौटा दीं और अपने पाँच सौ साधुओं सहित, कोष्ठक उद्यान से निकलकर विचरते हुए, सेयविया नगरी के मृगवन नामक उद्यान में पधारे। श्री श्रमण का पधारना जानकर, बाग़ के रक्षकों को बड़ी प्रसन्नता हुई। वे, उनके पास गये और उन्हें

वन्दना-नमस्कार कर, बाग़ में ही विराजने की प्रार्थना की। इसके पश्चात् प्रार्थना की, कि आपको पाट शैय्या या अन्य जिन वस्तुओं की आवश्यक्ता हो, वे हमारे यहाँ से ही लेने का दया करें।

इसके पश्चात्, बाग़ के रक्षक लोग चित सारथी के यहाँ आये और उन्हें बधाई देकर कहने लगे, कि जिन श्री केशीकुमार श्रमण के दर्शन तथा उनके नाम गोत्र श्रवण करने के आप इच्छुक हैं, वे आज मृगवन उद्यान में पधारे हैं। बाग़ के रक्षकों के मुख से यह शुभ संवाद सुनकर, चितसारथी अपने हृदय में बड़ा प्रसन्न हुआ और उन लोगों को विविध प्रकार के पुरस्कार देकर सम्मानित किया। इसके पश्चात्, रथ तैयार करने की आज्ञा देकर, स्वयं स्नानादि कार्यों से निवृत हुआ और वस्त्रालंकार पहन कर अपने साथियों समेत रथ पर सवार हो वहाँ आया, जहाँ श्री केशीकुमार श्रमण विराजमान थे। वहाँ पहुँच कर, उसने तीन बार प्रदक्षिणा की और विधि-वत् प्रणाम किया। तदुपरांत, सभाजनों के साथ बैठकर, वह भी धर्म श्रवण करने लगा।

धर्म श्रवण कर चुकने पर, चित ने प्रसन्न होते हुए प्रार्थना की, कि—हे भगवन्! हमारा राजा परदेशी अत्यन्त अधर्मी और प्रजाजनों तथा अन्य प्राणियों को दुःख देनेवाला है। इसलिये, यदि आप उसे धर्म का उपदेश करें, तो स्वयं परदेशी

राजा और बहुत से द्विपद, चतुष्पद, मृग, पशु, पक्षी, और सरी सप (पेट के बल चलने वाले) जीवों को अत्यन्त गुण होगा। हे स्वामिन्! यदि आप परदेशी राजा को धर्म का उपदेश देंगे, तो स्वयं परदेशी राजा तथा बहुत से श्रमण माहण एवं भिखारियों को अत्यन्त लाभदायक फल होगा। हे नाथ! यदि आप राजा परदेशी को धर्म का उपदेश देंगे, तो राजा के साथ ही साथ प्रजाजनों अर्थात् देश को भी बड़ा भारी गुण होगा।

कुछ लोगों की ऐसी धारणा है, कि इस स्थान पर चित्त श्रावक ने केवल परदेशी को गुण होने के विषय में प्रार्थना की है। पशु-पक्षी आदि के लिए नहीं। उन लोगों का भ्रम दूर करने के लिये, इस स्थान का मूलपाठ ही लिख दिया जाता है। देखिये, रायप्रसेणी सूत्र—

"जइणं देवाणुप्पिया! पएसिएस रण्णो धम्ममाइक्खेज्जा बहुगुणतरं खलु होज्जा, पएसिस्स रण्णो तेसिंच बहूणं दुप्पय चउप्पय मियपसुपंक्खीसरीसवाणं। तंज इणं देवाणुप्पिया! पएसिस्स रण्णो धम्ममाइक्खेज्जा बहु गुणतर फलं होज्जा तेसिंच बहूणं समण माहन भिक्खुयाणं। तंजइणं देवाणुप्पिया पएसिस्स बहुगुणतरं होज्जा सव्वस्सवि जणवयस्स"

यह पाठ स्पष्ट बतलाता है कि चित्तश्रावक ने समस्त प्राणियों की रक्षा की दृष्टि से यह प्रार्थना की थी। इसका

अर्थ हम स्वयं न करके, एक विद्वान् द्वारा किया हुआ अर्थ यहां लिखते हैं। सरदार शहर (बीकानेर) के एक सज्जन ने वादविवाद में इसका अर्थ कुछ और समझ कर अपनी शंका निवारण करने के लिये, इस पाठ का अर्थ, जोधपुरस्थित, पुरातत्व विभाग के अध्यक्ष साहित्याचार्य पं० विश्वेश्वरनाथजी रेऊ—जो संस्कृत-प्राकृत आदि भाषाओं के उद्भट विद्वान् हैं—से करवाया था। उन सज्जन के पत्र के उत्तर में, श्री रेऊजी ने अर्थ करके जो उत्तर दिया था, उस पत्र की प्रति लिपि यहां दी जाती है—

श्री रामो जयति

Archowlogical Dept.
Jodhpur.

चित्त जी श्रावक केशी मुनिराज से प्रार्थना करता है—

(१) हे देवानुप्रिय! यदि आप परदेशी राजा को धर्म सुनावेंगे, तो बहुत अधिक लाभ होगा, (फिर इससे) केवल राजा को ही नहीं, किन्तु बहुत से द्विपद (मनुष्यादि) चतुष्पद (गो भैंस आदि) मृग (हरणादि) पशु (वानरादि) पक्षी और सरीसृप (अर्थात् भूमी पर रेंगनेवाले साँप आदि) को भी लाभ होगा।

(२) हे महानुभाव! यदि आप परदेशी राजा को धर्म सुनावेंगे, तो बहुत अधिक फल होगा, (साथ ही इसके) श्रमणों (साधुओं) माहनों और भिक्षुओं को भी लाभ होगा।

(३) हे मुनिराज ? जो आप परदेशी राजा को धर्मोपदेश देंगे, तो उस परदेशी राजा के तमाम देश को भी बहुत लाभ होगा।

No- 655 Mls Dt. 14-3-31.

महाशय,

आप के ता ८-३-३१ के पत्रानुसार भापार्थ भेजा जाता है। पहुँच लिखें।

भवदीय—
विश्वेश्वरनाथरेऊ

ता० १४-३-३१

Officer Incharge.

ऊपर, एक ज़िम्मेदार विद्वान् तथा सरकारी अधिकारी द्वारा लिखे गये ऑफीशियल पत्र की अक्षरशः प्रति लिपि है। एक निष्पक्ष-व्यक्ति द्वारा किये गये इस अर्थ से स्पष्ट ही विदित हो जाता है, कि बारह-व्रतधारी समकिती-श्रावक चित-प्रधान राजा परदेशी के कल्याण के ही लिये नहीं, वल्कि प्राणिमात्र के कल्याण की भावना से प्रार्थना करता है। इसके साथ ही साथ यह भी विदित हो जाता है, कि प्राणियों को बचाना पापकार्य नहीं है। यदि पापकार्य होता, तो चितश्रावक यह प्रार्थना नहीं कर सकता था. कि महाराज ? आप जीवों के कल्याण के लिये उपदेश दीजिये। वल्कि यों कहना, कि— हे महाराज ! इन प्राणियों को बचाने की इच्छा से नहीं, वल्कि

राजा परदेशी को उबारने की इच्छा से आप धर्म का उपदेश दीजिये। एक बारह व्रतधारी-श्रावक द्वारा अर्ज़ की हुई तथा एक श्रुतकेवली एवं चार ज्ञान के धारक महामुनि द्वारा स्वीकृत होने के कारण, यह प्रार्थना बतलाती है, कि श्री केशीकुमार श्रमण ने, राजा परदेशी को उबारने तथा प्राणियों को मरते से बचाने की इच्छा से उपदेश दिया था। यदि जीव बचाना पाप होता, तो श्री केशीकुमार श्रमण, चित श्रावक की प्रार्थना सुन कर फौरन कहते —"हे चित! हम राजा परदेशी को उबारने की इच्छा से धर्म का उपदेश दे सकते हैं, किन्तु जीव बचाने के लिये नहीं। मरते जीव को बचाना पाप है और उसमें तुम्हें धर्म श्रद्धा है, इससे तुम्हारी श्रद्धा में दूषण आगया है। अपनी इस भूल के लिये, तुम आलोचना करो।" किन्तु ऐसा न कहना बतलाता है, कि चितश्रावक तथा केशीकुमार श्रमण इन दोनों की एक ही श्रद्धा थी, भिन्न नहीं। वे दोनों, समान रूप से जीव बचाने में धर्म मानते थे।

एक दूसरे जैनेतर विद्वान् का किया हुआ अर्थ

तद् यदि (ख) इति वाक्यालङ्कारे-देवानुप्रिय! प्रदेशिन राजानं धर्ममाख्याहि वह गुणं तर खलु भवेत् प्रदेशिन राज्ञ. तेषां बहूनाम् द्विपद चतुष्पद मृग पशु पक्षिसरीसृपाणाम्।

तद् यदि देवानुप्रिय! प्रदेशिनं राजानं धर्ममाख्याहि बहुगुणतर फल भवेत्-तेषां बहूनाम श्रमण माहण भिक्षुकानाम्।

तद् यदि देवानुप्रिय ! (प्रदेशिनं राजानं धर्म माक्ख्याहि) प्रदेशिनः वहुगुणतरं भवेत् जनपदस्य ।

हिन्दी अनुवाद—

चित श्रावक केशी मुनि से कहते हैं—

(तद्) यह पूर्व-पक्ष को अवबोधित करती है। 'णं' वाक्यालंकार के विषय—हे देवानुप्रिय ! यदि आप परदेशी राजा को धर्म सुनाओगे, तो निश्चिय करके अत्यन्त गुण होगा। (वह गुण किसको होगा ?) परदेशी राजा को और उन वहुत से द्विपद चतुष्पद मृग, पशु, पक्षी सरीसृप जीवो को।

(तद्) पूर्वपक्ष को अवबोधित करता है। हे देवानुप्रिय ! यदि परदेशी राजा को धर्म सुनावोगे, तो अत्यन्त गुणों का फल होगा। (वह फल किसको होगा ?) वहुत से श्रमण (साधु) माहण (ब्राह्मण) और भिक्षुकों को।

(तद्) पूर्वपक्ष को अवबोधित करता है। हे देवानुप्रिय ! यदि परदेशी राजा को धर्म सुनावोगे, तो वहुत गुण होगा, परदेशी राजा को और उसके जनपद (देश) को भी।

भवदीय—

केवलाद्वैत मतावलम्बी,

नारायण स्वामी.

यहाँ, कोई यह शंका कर सकता है, कि चित श्रावक गृहस्थ था इसलिये उसने भूल से ऐसा कह दिया होगा। किन्तु यह भी ठीक नहीं है। यदि चित श्रावक गृहस्थ था, तो इस बात को सुनने वाले श्री केशीकुमार श्रमण तो गृहस्थ नहीं थे। वे तो चार ज्ञान के स्वामी थे। उन्होंने ही इस बात का विरोध क्यों नहीं किया? इसके अतिरिक्त, जिस तरह से चित ने प्राणियों को सुख पहुँचाने की इच्छा, यानी उन्हें मरने के समय होने वाले आर्त्तध्यान से बचाने की इच्छा से उपदेश देने की प्रार्थना की थी, उसी तरह यदि किसी अज्ञानी ने मुनिराज से यह प्रार्थना की होती, कि—हे महाराज! आप अमुक व्यक्ति को उपदेश दीजिये, जिससे वह खूब हिंसा करे या लोगों की चीज़ें चुरावे"। तो क्या श्री केशीकुमार श्रमण इस बात को सुनकर चुप रह जाते या अपना सहमत प्रकट कर सकते थे? कदापि नहीं। वे फ़ौरन ही उसका विरोध करते और कहते, कि हम पाप के कार्यों की वृद्धि के लिये उपदेश नहीं दे सकते। हाँ, यदि धर्म के कार्यों की वृद्धि होती हो, तो दे सकते हैं। जब, हिंसा और चोरी की वृद्धि के लिये साधारण-मुनिराज भी उपदेश नहीं दे सकते, तो 'शंका करने वालों के मतानुसार अठारह पापों से परिपूर्ण जीव रक्षा' के लिये श्री केशीकुमार श्रमण के सदृश ज्ञानी मुनिराज कैसे उपदेश दे सकते थे? लेकिन नहीं, वे जीव बचाने को धर्मकार्य मानते थे, तभी

तो उन्होंने उपदेश दिया था न? इससे सिद्ध है, कि जीव बचाना एकान्त-पाप नहीं, बल्कि धर्म कार्य है। अस्तु।

चित का कथन सुनकर, श्री केशीकुमार श्रमण ने फ़रमाया हे चित! जीव चार प्रकार से केवली प्ररूपित धर्म श्रवण करने का लाभ नही प्राप्त कर सकता। वे चारो कारण मैं तुम्हें बतलाता हूं। पहला कारण यह है, कि बाग़-बगीचे में ठहरे हुए मुनि के सन्मुख जाकर उन्हें बन्दन नमस्कार न करे, न उन्हें कल्याणकारी, मंगलकारी तथा ज्ञानवन्त जानकर उनकी उपासना करे और न जिज्ञासु बनकर प्रश्न पूछे। दूसरा कारण, बाग़ की ही भाँति उपाश्रय में जाकर, भक्ति पूर्वक प्रश्न नहीं पूछना है। तीसरा कारण, गोचरी में (भिक्षार्थ) गये हुए श्रमण माहण का अभिवादन विनय तथा उन्हें अशन पान की वस्तुएँ देना आदि कार्य न करे। चौथा कारण यह है, कि जब किसो श्रमण माहण को देखे, तो किसी वस्त्र से या हाथों से अपना मुँह ढकले और उनके दर्शन भी न करे। उपरोक्त चार कारणों से केवली प्ररूपित धर्म की प्राप्ति हो सकती हैं, वे भी मैं तुम्हें बतलाता हूँ।

धर्म श्रवण का प्रथम मार्ग यह है, कि मनुष्य, बाग़ में विराजमान श्रमण माहण के सन्मुख 'जाकर, विनयपूर्वक उनकी उपासना करे और अपने सन्देह के सम्बन्ध मे उनसे प्रश्न पूछे। इसी तरह, उपाश्रय में यदि मुनिराज ठहरे हों, तो

वहाँ जाकर अपने सन्देह के सम्बन्ध में भक्ति और विनयपूर्वक प्रश्न करना, धर्म श्रवण का दूसरा मार्ग है। धर्म प्राप्ति का तीसरा मार्ग यह है, कि मनुष्य गोचरी में गये हुए श्रमण माहण की उपासना करे और उन्हें विविध प्रकार के भोजन आदि प्रदान करे तथा उनकी आवश्यकताओं एवं अपनी शंका के सम्बन्ध में प्रश्न पूछे। इसी तरह चौथा कारण यह है कि, जब मुनि-महात्माओं का समागम होजाय तब अपने मुख को वस्त्र किंवा हाथों से ढँके नहीं और भक्तिपूर्वक उनके दर्शन करे। ऐसा व्यवहार करने पर ही, मनुष्य को केवली प्ररूपित धर्म के श्रवण का सौभाग्य प्राप्त हो सकता है। ऐसी दशा में, हे चित्त! तुम्हीं बतलाओ, कि परदेशी राजा को धर्मश्रवण का लाभ कैसे प्राप्त हो सकता है, जब कि वह किसी श्रवण माहण को देख कर छिप जाता है और उनका सत्कार सम्मान नहीं करता?

श्री श्रमण का यह कथन सुन कर, चित्त ने नम्रतापूर्वक प्रार्थना की—हे स्वामिन! मैं परदेशी राजा को आप की सेवा में लाने का प्रयत्न करूँगा। कुछ दिन हुए, तब राजा परदेशी के यहाँ कम्बोज देश से चार घोड़े आये थे। राजा ने, वह घोड़े मुझे इस लिये दे दिये थे, कि मैं उन्हें समुचित शिक्षा दूँ। मैंने उन घोड़ों की तैयारी की सूचना पहले भी राजा को देदी थी, किन्तु आज उनकी गति दिखलाने के बहाने से मैं

राजा परदेशी को यहाँ ले आऊँगा। उस समय, आप उन्हें धर्म का उपदेश दीजियेगा।

चित की प्रार्थना के उत्तर में श्री केशीकुमार श्रमण ने फ़रमाया—हे चित! पाँचो समवाय की अनुकूलता से देखा जावेगा।

इसके पश्चात्, चितसारथी ने श्री श्रमण को विधिवत् वन्दन नमस्कार किया और अपने रथ पर सवार होकर, पुनः अपने घर लौट आये।

दूसरे दिन सवेरे, उजियाला होते ही चितसारथी ने राइसी प्रतिक्रमण किया, नियम धारण किया और आवश्यक-कार्यों से निवृत हो, सूर्य के उदय होते ही अपने घर से चल कर राजा परदेशी के पास पहुँचा। वहाँ जाकर, परदेशी से हाथ जोड़ कर निवेदन किया—हे स्वामिन्! कुछ दिन पहले कम्बोज देश से चार घोड़े आये थे, जो आपने मुझे दिये थे। वे अब पूरी तरह तैयार हो चुके हैं, इस लिये आज मैं, आप को उनकी चाल तथा दौड़ दिखलाना चाहता हूं।

परदेशी नरेश बोले—चित! बहुत अच्छी बात है, आज मैं उनकी चाल तथा दौड़ अवश्य देखूँगा। तुम शीघ्र ही उन्हे रथ में जोत कर ले आओ। परदेशी की आज्ञा पाकर, चित ने रथ तैयार किया और राजा को उसमें बैठने की प्रार्थना की। राजा ने, बहुमूल्य वस्त्रालंकार धारण किये और प्रसन्न

होता हुआ, उस चार अश्ववाले रथ में जा बैठा। राजा के बैठते ही, चित्त ने रथ चलाया और नगर के बीच में होकर, बाहर निकले। बाहर निकलते ही, चित्त ने घोड़ों की बागडोर ढिलाई और उन्हें अत्यन्त तीव्र गति से कई योजन तक दौड़ाया। बहुत दूर निकल जाने पर, जब राजा परदेशी गर्मी प्यास और रथ की तेज़ी के कारण लगने वाली हवा से दुःखी होने लगा, तो उसने चित्त से कहा—हे चित्त! अब मैं बहुत परेशान हूँ, इस लिये रथ वापिस लौटा ले चलो। राजा का यह कथन सुनकर, चित्त सारथी ने रथ वापिस लौटाया और उसे मृगवन नामक बाग़ में ले आया, जहाँ श्री केशीकुमार श्रमण विराजमान थे। बाग़ में पहुँच कर चित्त ने राजा से कहा—हे स्वामिन्! यह मृगवन उद्यान आगया। यहां हम लोग घोड़ों सहित विश्राम कर लें। राजा ने, चित्त की यह बात स्वीकार कर ली और रथ से नीचे उतर पड़ा। चित्त ने, घोड़ों को खोल दिया।

राजा परदेशी को यहाँ ले आऊँगा। उस समय, आप उन्हें धर्म का उपदेश दीजियेगा।

चित की प्रार्थना के उत्तर में श्री केशीकुमार श्रमण ने फ़रमाया—हे चित ! पाँचो समवाय की अनुकूलता से देखा जावेगा।

इसके पश्चात्, चितसारथी ने श्री श्रमण को विधिवत् वन्दन नमस्कार किया और अपने रथ पर सवार होकर, पुनः अपने घर लौट आये।

दूसरे दिन सवेरे, उजियाला होते ही चितसारथी ने राइसी प्रतिक्रमण किया, नियम धारण किया और आवश्यक-कार्यों से निवृत हो, सूर्य के उदय होते ही अपने घर से चल कर राजा परदेशी के पास पहुँचा। वहाँ जाकर, परदेशी से हाथ जोड़ कर निवेदन किया—हे स्वामिन् ! कुछ दिन पहले कम्बोज देश से चार घोड़े आये थे, जो आपने मुझे दिये थे। वे अब पूरी तरह तैयार हो चुके हैं, इस लिये आज मैं, आप को उनकी चाल तथा दौड़ दिखलाना चाहता हूं।

परदेशी नरेश बोले—चित ! बहुत अच्छी बात है, आज मैं उनकी चाल तथा दौड़ अवश्य देखूँगा। तुम शीघ्र ही उन्हें रथ में जोत कर ले आओ। परदेशी की आज्ञा पाकर, चित ने रथ तैयार किया और राजा को उसमें बैठने की प्रार्थना की। राजा ने, बहुमूल्य वस्त्रालंकार धारण किये और प्रसन्न

होता हुआ, उस चार अश्ववाले रथ में जा बैठा। राजा के बैठते ही, चित ने रथ चलाया और नगर के बीच में होकर, बाहर निकले। बाहर निकलते ही, चित ने घोड़ों को बागडोर दबाई और उन्हें अत्यन्त तीव्र गति से कई योजन तक दौड़ाया। बड़ी दूर निकल जाने पर, जब राजा परदेशी गर्मी प्यास और रथ की तेज़ी के कारण लगने वाली हवा से दुखी होने लगा, तो उसने चित से कहा—हे चित! अब मैं बहुत परेशान हूं, इस लिये रथ वापिस लौटा ले चलो। राजा का यह कथन सुनकर, चित सारथी ने रथ वापिस लौटाया और उसे मृगवन नामक बाग़ में ले आया, जहां श्री केशीकुमार श्रमण विराजमान थे। बाग़ में पहुँच कर चित ने राजा से कहा—हे स्वामिन! यह मृगवन उद्यान आगया। यहां हम लोग घोड़ों सहित विश्राम कर लें। राजा ने, चित की यह बात स्वीकार कर ली और रथ से नीचे उतर पड़ा। चित ने, घोड़ों को खोल दिया।

कुछ लोग, अनुकम्पा के मार्ग में होने वाले आरम्भ के कारण, अनुकम्पा को ही एकान्त-पाप बतला देते हैं। ऐसी उल्टी बुद्धि के मनुष्यों को इस स्थान पर विचार करना चाहिये, कि यदि आरम्भ के ही कारण कोई अच्छा-कार्य पाप हो सकता है तब तो फिर चित श्रावक ने, राजा परदेशी को बोध दिलाने की भावना से जो घोड़ों को दौड़ाया था, उस आरम्भ के कारण बोध दिलाने कोभी पाप ही मानना

पड़ेगा। किन्तु, यह बात नहीं है। स्वय शंकाकारों के गुरु लिखते हैं—

धर्म दलाली चित करे।

किणविध ल्यावे राय ने, सॉभलज्यो नरनारी जी।
चित्त सरीखा उपगारिया, बिरला इण संसारों जी ॥धर्म॥
आप मोनें सूँप्या हूँता, तू देख लेज्यो चौड़े जी।
अवसर वरते एहवो, घोडा किशराक दौड़े जी ॥धर्म॥

(परदेशी राजा की संघ ढाल—१०]

इस पद्य में, चितश्रावक के उपकार को अद्वितीय और धर्म दलाली माना गया है। साथ ही, स्वयं पद्यकार ने यह वात स्वीकार की है, कि 'घोड़ा किसडाक दोड़े जी' यानी घोड़े किस तेज़ी से दौडते हैं। इसका यह मतलव है, कि घोड़े दौड़ा कर जो धर्म दलाली की गई है, वह अद्वितीय उपकार है। जब चित का उपकार अद्वितीय उपकार है, तो जो और लोग शुभ कार्य के मार्ग में थोड़ा-सा आरम्भ करें, उनके उस शुभ-कार्य को ही आरम्भ के कारण एकान्त-पाप कर डालना अज्ञान के अतिरिक्त और क्या है ?

जिस प्रकार से, चितश्रावक का घोड़े दौड़ाना अलग और धर्म की दलाली अलग है, उसी प्रकार से शुभ-कार्य पृथक् और आरम्भ अलग चीज़ है। आरम्भ के कारण धर्म को पाप मानने पर, चित की दलाली को भी पाप ही मानना पड़ेगा,

जो स्वयं शंकाकार के आचार्यों के कथन से भी विपरीत होगा। इसलिये, पक्षपात छोड़कर सबको यह बात माननी चाहिये, कि आरम्भ और धर्म अलग-अलग हैं, एक नहीं। अस्तु।

रथ से उतर कर राजा परदेशी, चित के साथ साथ घोड़ों को टहलाता हुआ इधर उधर टहलने लगा। टहलते टहलते उस बाग़ में विराजमान तथा बड़ी भारी सभा को उच्च स्वर में उपदेश देते हुए श्री केशीकुमार श्रमण पर उसकी दृष्टि पड़ी। उन्हें देखते ही, राजा के हृदय में यह विचार आया, कि "ये श्रोता लोग कैसे जड़, मूढ़ और अज्ञानी हैं, कि उस जड़ और अज्ञानी की पर्युपासना करते हैं। ये बीच में बैठे हुए व्यक्ति यद्यपि जड़, मूढ, अपण्डित और अज्ञानी हैं, किन्तु हैं बड़े तेजस्वी। ये क्या खाते होंगे, क्या पीते होंगे, क्या कोई इन्हें देता भी होगा? आखिर ये इतने ज़ोर जोर से बोल रहे हैं, तो जरूर ही इन्हें कुछ न कुछ मिलता ही होगा।

यों विचार कर राजा ने चित से कहा हे चित! ये लोग बड़े अज्ञानी हैं, जो उस अज्ञानी की उपासना कर रहे हैं। इन लोगों की भीड़ ने, मेरे बाग़ का बहुत सा भाग अकारण ही रोक रखा है, जिसके कारण मैं अच्छी तरह टहल भी नहीं सकता। यह बीच में बैठा हुआ व्यक्ति ही अपने ढोंग के बल पर इन मूढ़ों को एकत्रित किये हुए है।

राजा के कथन का उत्तर देते हुए चित बोले—हे राजन्! ये बीच में बैठे हुए व्यक्ति कोई साधारण मनुष्य नहीं, बल्कि श्री पार्श्वनाथ स्वामी के प्रांत शिष्य श्री केशीकुमार नामक श्रमण हैं। ये, बड़े प्रतापी, जाति सम्पन्न और चार ज्ञान के धारण करने वाले तथा परम अवधि ज्ञान वाले हैं। वे आत्मा और शरीर को अलग अलग मानते और दूसरों को ऐसा ही उपदेश देते हैं।

चित की बात सुनकर, राजा आश्चर्य में पड़ गया। उसने चित से पूछा, कि क्या वे सचमुच अवधि ज्ञान के धारक और आत्मा तथा शरीर को भिन्न मानने वाले हैं?

चित ने कहा—जी हाँ, वे सम्पूर्ण अवधि ज्ञान वाले तथा आत्मा से शरीर की भिन्नता मानने वाले हैं।

राजा—तो क्या हम लोगों को उनके पास चलना चाहिये?

चित—हां महाराज, हम लोगों को अवश्य ही उनके पास जाकर कुछ पूछना चाहिये।

राजा—अच्छा तो चलो।

चित को अपने साथ लिये हुए राजा परदेशी श्री केशी-कुमार श्रमण के समीप आया और उनके पास खड़ा होकर यों कहने लगा—अहो भगवन्! क्या आप अवधिज्ञान वाले और आत्मा को शरीर से भिन्न मानने वाले हैं?

राजा का प्रश्न सुनकर, श्री केशीकुमार श्रमण ने कहा—हे राजन्! जिस प्रकार रत्नादि के व्यापारी महसूल की चोरी करते हैं, उसी प्रकार साधुओं के सन्मुख जाकर, उनका विनय न करना भी चोरी ही है। तुमने, मेरा विनय किये विना ही प्रश्न पूछ लिया, इसलिये तुम्हारा यह प्रश्न करना उचित नहीं कहा जा सकता। फिर भी, मैं तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देता हूँ। राजन्! क्या मुझे देखकर तुम्हारे हृदय में यह विचार आया था, कि "ये जड लोग जड की उपासना करते हैं इन लोगों को भीड ने, मेरे बाग़ का बहुत सा भाग अकारण ही रोक रखा है, जिसके कारण मैं अच्छी तरह टहल भी नहीं सकता—आदि मेरा यह कहना सत्य है या नहीं?

श्री श्रमण के मुख से, अपने हृदय में आये हुए सब विचारों को सुन, राजा परदेशी ने आश्चर्य चकित होकर कहा—हाँ महाराज! मेरे मन में यह भावना आई तो अवश्य थी। किन्तु ऐसा कौन सा ज्ञान या दर्शन है, जिसके बल से आपने मेरे हृदय के भावों को भी जान लिया?

श्री केशीकुमार श्रमण बोले—अहो राजन् हमारे जैसे श्रमण निर्ग्रन्थ को पाँच ज्ञान हो सकते हैं। पहला आभिनिबोधिक ज्ञान, दूसरा श्रुत ज्ञान, तीसरा अवधि ज्ञान, चौथा मन:पर्याय ज्ञान और पाँचवा केवल ज्ञान। इन पांच ज्ञानों में से, मुझ में केवल ज्ञान के अतिरिक्त शेष चारों ज्ञान हैं। केवल ज्ञान, श्री अरिहन्त भगवान को होता है। मैंने, अपने उन्हीं चार छद्मस्थ

राजा के कथन का उत्तर देते हुए चित बोले—हे राजन्! ये बीच में बैठे हुए व्यक्ति कोई साधारण मनुष्य नहीं, बल्कि श्री पार्श्वनाथ स्वामी के प्रात शिष्य श्री केशीकुमार नामक श्रमण हैं। ये, बड़े प्रतापी, जाति सम्पन्न और चार ज्ञान के धारण करने वाले तथा परम अवधि ज्ञान वाले हैं। वे आत्मा और शरीर को अलग अलग मानते और दूसरों को ऐसा ही उपदेश देते हैं।

चित की बात सुनकर, राजा आश्चर्य में पड़ गया। उसने चित से पूछा, कि क्या वे सचमुच अवधि ज्ञान के धारक और आत्मा तथा शरीर को भिन्न मानने वाले हैं?

चित ने कहा—जी हाँ, वे सम्पूर्ण अवधि ज्ञान वाले तथा आत्मा से शरीर की भिन्नता मानने वाले हैं।

राजा—तो क्या हम लोगों को उनके पास चलना चाहिये?

चित—हां महाराज, हम लोगों को अवश्य ही उनके पास जाकर कुछ पूछना चाहिये।

राजा—अच्छा तो चलो।

चित को अपने साथ लिये हुए राजा परदेशी श्री केशीकुमार श्रमण के समीप आया और उनके पास खड़ा होकर यों कहने लगा—अहो भगवन्! क्या आप अवधिज्ञान वाले और आत्मा को शरीर से भिन्न मानने वाले हैं?

राजा का प्रश्न सुनकर, श्री केशीकुमार श्रमण ने कहा—हे राजन्! जिस प्रकार रत्नादि के व्यापारी महसूल की चोरी करते हैं, उसी प्रकार साधुओं के सन्मुख जाकर, उनका विनय न करना भी चोरी ही है। तुमने, मेरा विनय किये बिना ही प्रश्न पूछ लिया, इसलिये तुम्हारा यह प्रश्न करना उचित नहीं कहा जा सकता। फिर भी, मैं तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देता हूँ। राजन्! क्या मुझे देखकर तुम्हारे हृदय में यह विचार आया था, कि "ये जड लोग जड की उपासना करते हैं इन लोगों की भीड़ ने, मेरे बाग़ का बहुत सा भाग अकारण ही रोक रखा है, जिसके कारण मैं अच्छी तरह टहल भी नहीं सकता—आदि मेरा यह कहना सत्य है या नहीं?

श्री श्रमण के मुख से, अपने हृदय में आये हुए सब विचारों को सुन, राजा परदेशी ने आश्चर्य चकित होकर कहा—हाँ महाराज! मेरे मन में यह भावना आई तो अवश्य थी। किन्तु ऐसा कौन सा ज्ञान या दर्शन है, जिसके बल से आपने मेरे हृदय के भावों को भी जान लिया?

श्री केशीकुमार श्रमण बोले—अहो राजन् हमारे जैसे श्रमण निर्ग्रन्थ को पाँच ज्ञान हो सकते हैं। पहला आभि निबोधिक ज्ञान, दूसरा श्रुत ज्ञान, तीसरा अवधि ज्ञान, चौथा मनःपर्याय ज्ञान और पाँचवा केवल ज्ञान। इन पांच ज्ञानों में से, मुझ में केवल ज्ञान के अतिरिक्त शेष चारों ज्ञान हैं। केवल ज्ञान, श्री अरिहन्त भगवान को होता है। मैंने, अपने उन्हीं चार छद्मस्थ

ज्ञानों की शक्ति से तुम्हारे हृदय की बातें जान ली थीं।

श्री श्रमण की यह शक्ति देख तथा जानकर, राजा परदेशी अत्यन्त प्रभावित हुआ। उसने, श्री श्रमण से पूछा, कि क्या मैं यहां बैठ जाऊँ? तब श्री श्रमण बोले, कि राजन्! यह तुम्हारा बाग़ है, इसलिये तुम्ही जानो। यह उत्तर सुन कर, राजा, चित्तसारथी सहित वहीं बैठ गया। बैठकर, उसने फिर प्रश्न किया—अहो भगवन्! आप के सदृश श्रमण-निर्ग्रन्थ को क्या यह बात दृढ़तापूर्वक मालूम है, कि जीव और शरीर पृथक्-पृथक् हैं, शरीर ही जीव नहीं है?

श्री श्रमण बोले—राजन्! हमारे जैसे श्रमण निर्ग्रन्थ को यह बात अच्छी तरह मालूम होती है, कि जीव अन्य है और शरीर दूसरी चीज़ है, शरीर ही जीव नहीं है।

यह सुनकर, परदेशी राजा कहने लगा—हे भगवन्! यदि आपके सदृश श्रमण निर्ग्रन्थों का यह दृढ़-विश्वास होता है, कि शरीर से जीव पृथक्-वस्तु है, तो मुझे इस पर विश्वास कराने के लिये मैं एक तरीक़ा बतलाता हूँ। वह यह, कि इसी सेयविया नगरी में मेरा दादा राज्य करता था। वह भी, बड़ा अधर्मी और प्रजा को कष्ट देनेवाला था। आपके कथनानुसार, वह अपने पापों का फल भोगने के लिये अवश्य ही किसी नर्क में उत्पन्न हुआ होगा। मैं, अपने दादा को प्राणों से भी अधिक प्रिय था। यदि, वे आकर मुझ से यह बात

कह दे, कि— "हे पौत्र ! मैं तेरा दादा था और इसी नगरी का राज्य करते हुए, मैंने प्रजा को बड़ा कष्ट दिया था और नाना प्रकार के अधर्म-कार्य करता था। अब, उन्हीं पापों का फल भोगने के लिये मुझे नर्क में उत्पन्न होना पड़ा है। इस लिये, यदि तू इन कार्यों से बचेगा, तो तुझे नर्क में न जाना पड़ेगा।" तो मैं इस बात पर दृढ़तापूर्वक विश्वास कर लूंगा, कि शरीर और आत्मा, ये दो भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं।

श्री श्रमण बोले—राजन् ! क्या तुम्हारी रानी का नाम सूर्यकान्ता है ?

राजा—जी हाँ महाराज।

श्री श्रमण—यदि तुम्हारी वह सूर्यकान्त नामक रानी, स्नान शृङ्गार आदि करके, किसी अन्य पुरुष के साथ कामभोग भोग रही हो और तुम उसे देख लो, तो उस पुरुष को क्या दण्ड दोगे ?

राजा—भगवन् ! मैं उस पुरुष को प्राण दण्ड दूँ।

श्री श्रमण—राजन् ! उस समय यदि वह पुरुष यह बात कहे, कि "एक क्षण भर ठहर जाओ, मेरे हाथ-पांव मत काटो या मेरा सिर मत उडाओ, मै, अपने स्वजन-सम्बन्धी तथा मित्रों से यह बात कह जाऊँ, कि मैंने बुरा-कार्य किया था, जिसके बदले में मुझे यह दुःख उठाना पड़ रहा हैं। इसलिये अब तुममें से कोई भी ऐसा कार्य न करना।" तो क्या तुम

उसकी बात मानकर, उसे अपने घर के लोगों को उपदेश देने जाने दोगे ?

राजा—नहीं महाराज ! ऐसा कभी नहीं हो सकता। मैं, उसकी बात हरगिज़ नहीं मान सकता, क्योंकि उसने मेरा महान्-अपराध किया होगा।

श्री श्रमण—राजन् ! इसी प्रकार समझलो, कि तुम्हारे दादा को अधर्म के बदले में नर्क की प्राप्ति हुई है। वह, वहां से आना भी चाहता है, किन्तु उस अपराधी की तरह उसे भी ससार में आने की आज्ञा नहीं मिल सकती। यहां आने की, उत्कट इच्छा रखता हुआ भी, तुम्हारा दादा इसीलिये असमर्थ है। इस कारण, हे राजन् ! अब तुम्हें यह विश्वास करना चाहिये, कि शरीर और जीव पृथक्-पृथक् वस्तुएँ हैं, एक नहीं।

राजा—भगवन् ! आपके कथनानुसार, नर्क का जीव विवश होने के कारण संसार में नहीं आसकता, यह बात जानली। किन्तु, इसी सेयविया नगरी में मेरी दादी बड़ा ही धार्मिक-जीवन व्यतीत करती थी। वह, धर्मपूर्वक जीविका चलाने वाली और श्रमणोपासिका थी; जीवाजीव का स्वरूप जानती थी और आत्मतत्व पर उसका दृढ़ विश्वास था। आपके सिद्धान्त के अनुसार, वह बड़े-भारी पुण्य का संचय करके, मृत्यु के पश्चात् किसी देवलोक में, देवभव में उत्पन्न

हुई होगी। मैं, उसी दादी का पौत्र हूं। वह, मुझे सीमातीत प्रेम करती थी। यदि, वह स्वर्ग से लौटकर मुझसे यह बात कहे, कि—"हे पौत्र! मैं तेरी दादी हूं और इसी सेयविया नगरी में रहते हुए मैंने अत्यन्त धार्मिक-जीवन व्यतीत किया था। मैंने, सदैव धर्मपूर्वक जीविका चलाई थी। श्रमणोपासिका के रूप में रहते हुए, मैंने सदैव आत्मतत्व पर विश्वास किया था। इन्हीं सत्कार्यों के प्रभाव से, बड़े-भारी पुण्य का संचय करके, मैं देवभव में उत्पन्न हुई हूं, इसलिये हे पौत्र! तू भी धार्मिक-जीवन व्यतीत कर और आत्मतत्व पर विश्वास रख, तो तू भी बड़े-भारी पुण्य का संचय करके देवलोक में उत्पन्न होगा।" तो मैं इस बात पर श्रद्धा कर सकता हूं, कि जीव और शरीर दो अलग-अलग चीज़ें हैं, शरीर ही जीव नहीं है। यदि, मेरी दादी आकर मुझ से ऐसा नहीं कहती, तो मेरा यह विश्वास दृढ ही रहेगा, कि जीव और शरीर एक ही चीज़ हैं, अलग नहीं।

श्री केशीकुमार श्रमण बोले—अहो राजन्! जब तुम स्नानादि कृत्यों से निवृत हो, भीगे हुए वस्त्रों सहित, हाथ में पानी का कलश और धूप का कड़छा लिये हुए देवालय में जा रहे हो, उस समय यदि कोई मनुष्य पाखाने में खड़ा-खड़ा तुम से कहे कि—"हे स्वामिन्! इधर पधारिये और कुछ देर पाखाने में बैठिये" तो क्या तुम उसका कहना मान सकते हो?

राजा—नहीं महाराज ! मैं वहाँ हरगिज़ नहीं जा सकता।

श्री श्रमण—ऐसा क्यों ?

राजा—महाराज ! वह स्थान गन्दा है और मै पवित्र होकर, पवित्र-स्थान को जाने की तैयारी में होऊँगा।

श्री श्रमण—हे राजा ! इसी तरह तेरी दादी भी धर्मात्मा होने के कारण, हमारे मतानुसार पुण्य का संचय करके देवलोक यानी उच्च-स्थल मे गई होगी। वह भी मृत्युलोक में आने की इच्छा करती है, किन्तु जिस प्रकार तुम स्नानोपरान्त पाखाने में जाने से नफ़रत करते हो, उसी तरह वह देवलोक में पहुँच कर, दुर्गन्धिपूर्ण मृत्युलोक में आने से घृणा करती है। इस कारण हे राजन् ! वह तुम्हें उपदेश देने नहीं आती। अब तो तुम्हें विश्वास करना चाहिये, कि जीव और शरीर पृथक्-पृथक् वस्तुएँ हैं, एक नहीं।

राजा—महाराज ! इन कारणों से तो मेरा ही मत सच्चा प्रतीत होता है। फिर भी, मैं आपको और उदाहरण सुनाता हूं। एक वार, मैं अपने सरदारों तथा मन्त्रियों सहित बाहर के दीवानखाने में बैठा था। इसी समय, नगर का कोतवाल, एक चोर को, चोरी के माल सहित पकड़ कर मेरे सामने लाया। मैंने, उस चोर को ज़िन्दा ही एक लोहे की कुम्भी में डलवा दिया तथा उस पर लोहे का ढक्कन लगवा कर, उसे लोहे से झलवा दिया। इसके पश्चात्, उसकी रक्षा के लिये

मैने चारों तरफ़ सिपाहियों को नियुक्त कर दिया। कुछ दिन बीतने पर, एक बार मैं उस लोहे की कुम्भी के पास आया और उसे खोल कर अच्छी तरह देखने लगा। मुझे, वह चोर मरा हुआ मिला। किन्तु उस कुम्भी मे मैंने कोई छेद या दराज़ ऐसी नहीं पाई जिसमे होकर जीव बाहर निकल सका हो। हे भगवन्! यदि उस लोहे की कुम्भी में कोई छेद या दराज़ मुझे ऐसी दीख पड़ता, जिसके द्वारा जीव का बाहर निकल आना सम्भव होता, तो मैं इस बात पर विश्वास कर सकता था, कि जीव और शरीर पृथक् चीजें हैं, किन्तु जब हवा के आने जाने को इतना भी मार्ग उस कुम्भी में नहीं था, तो मैं यह कैसे मान सकता हूं, कि जीव नाम की कोई चीज़, इस शरीर से पृथक् है।

श्री श्रमण बोले—राजन्! एक पक्का कमरा, जो चारों तरफ़ से बन्द हो और जिसमें हवा के जाने आने का भी कोई मार्ग न हो, उसमें कोई व्यक्ति ढोल और उसे बजाने का डण्डा लेकर प्रवेश करे और दरवाज़े को अच्छी तरह बन्द करके भीतर उस ढोल को खूब जोर से बजावे, तो क्या उस ढोल की आवाज़ कमरे से बाहर आवेगी?

राजा हाँ महाराज, कमरे के बिलकुल बन्द होने पर भी आवाज़ बाहर अवश्य आवेगी।

श्री श्रमण—उस कमरे में, किसी प्रकार का छेद अथवा

दराज़ हो जाती है, जिसके द्वारा वह शब्द बाहर निकल आता है ?

राजा— नहीं महाराज ? कुछ भी नहीं होता !

श्री श्रमण—राजन् ! इसी प्रकार जीव की गति भी किसी पदार्थ से रुक नहीं सकती। उसकी गति अप्रतिहत होती है, वह पृथ्वी, शिला और पर्वत को भी फाडकर बाहर निकल सकता है। इसलिये तुम्हें श्रद्धा करनी चाहिये, कि जीव और शरीर अलग-अलग पदार्थ हैं, एक नहीं।

राजा—महाराज ! किन्तु अभी और भी ऐसे कारण हैं, जिनसे मैं इस बात को नहीं मान सकता, कि जीव और शरीर अलग-अलग वस्तुएँ हैं। एक वार का ज़िक्र है, कि मैं बाहर के दीवानख़ाने में बैठा था। इसी समय, नगर का कोतवाल एक चोर को पकड़ कर लाया। उसे, मैंने उसी क्षण मार डाला और एक लोहे की कुम्भी में डलवाकर, उसका ढक्कन इस तरह झलवा दिया, कि उसमें हवा भी न जासके। इसके बाद, उस कुम्भी की रक्षा के लिये मैंने सैनिकों की नियुक्ति कर दी। कुछ दिन बीतने पर, एक वार मैं उस लोह कुम्भी के पास गया और उसका ढक्कन खोल कर देखता हूं, तो उसमें बहुत से कीड़े पडे नज़र आये। परन्तु, मैंने उस कुम्भी में ऐसा कोई छिद्र नहीं देखा था, जिसके द्वारा उसमें वह कीड़े घुस गये हों, या उनके जीव ही भीतर जा सके हों।

ऐसी दशा में, मैं इस बात को कैसे स्वीकार कर सकता हूँ, कि जीव शरीर से पृथक् है ? इस उदाहरण से सिद्ध हुआ, कि मेरा यह कथन, है कि 'जीव और शरीर एक हैं, भिन्न नहीं' नितान्त सत्य है।

यह सुनकर, श्री केशीकुमार श्रमण बोले—राजन् ! तुमने कभी गरम किया हुआ लोहे का गोला देखा है ?

राजा—हाँ महाराज, मैंने ऐसे अनेक गोले देखे हैं।

श्री श्रमण—तो क्या उस गोले में कोई ऐसा छेद होता है, जिसके द्वारा अग्नि उसके भीतर घुस जाती है ?

राजा—नहीं महाराज, उसमें छेद तो नहीं होता।

श्री श्रमण—अहो राजन् ! उसी प्रकार जीव भी बिना छेद के प्रत्येक स्थान में प्रवेश कर सकता है। जीव की गति अप्रतिहत होती है, यानी वह किसी तरह रोका नहीं जा सकता, यह बात पहले बतलाई जा चुकी है। इसलिये, अब तुम्हें इस बात पर विश्वास करना चाहिये कि जीव और शरीर दो भिन्न भिन्न वस्तुएँ हैं, एक नहीं।

राजा—किन्तु महाराज, अभी और भी कुछ ऐसे कारण हैं, जिनकी वजह से मैं आत्मा और शरीर की भिन्नता नहीं स्वीकार कर सकता। जिस प्रकार, एक जवान बाण विद्यादि कलाओं में निपुण मनुष्य बाण चलाने और ठीक निशाना मारने में सफल होता है, उस तरह कोई बालक या

बाणविद्या रहित पुरुष यदि बाण फेंक सके, तो मैं यह विश्वास करलूं, कि शरीर और आत्मा पृथक्-पृथक् चीजें हैं। क्योंकि जब सब में आत्मा है, तो सब को समान रूप से कार्य करने की क्षमता होनी चाहिये? यदि समान रूप से कार्य नहीं कर सकते तो फिर मेरा ही कथन सत्य ठहरता है, कि जो शरीर है, वही आत्मा है।

श्री श्रमण—राजन्! कोई युवक, जो बाणविद्या में निपुण हो, वह नये धनुष तथा नये बाण से जैसा अच्छा निशाना मार सकता है, वैसा निशाना क्या पुराने धनुष और पुराने बाण से मार सकता है।

राजा—नहीं महाराज, नहीं मार सकता।

श्री श्रमण—ऐसा क्यों?

राजा—इसलिये कि उसके उपकरण ठीक नहीं हैं।

श्री श्रमण—इस में जीव की शक्ति कारण नहीं होती। जिस प्रकार वह युवक अपने अपूर्ण उपकरणों के कारण निशाना मारने में असमर्थ होता है, उसी प्रकार शरीर रूपी उपकरण जिस जीव का अपूर्ण है, वह भी कार्य नही कर सकता। इस-लिये हे नरेश! अब तुम्हें श्रद्धा करनी चाहिये, कि जीव और शरीर दो भिन्न पदार्थ हैं, एक नहीं।

राजा—अहो भगवन्! आप बुद्धिमान् हैं, इसलिये अनेक प्रकार क उदाहरण देकर मेरे तर्कों का खण्डन कर देते हैं।

किन्तु, अभी मेरे पास कुछ ऐसे कारण और हैं, जिनसे मैं आपका कथन स्वीकार नहीं कर सकता। जिस प्रकार एक युवा और कलाकौशल में निपुण युवक, किसी लोहे, सीसे या ऐसे ही अन्य भारी पदार्थों का वज़न उठाने में समर्थ होता है, उसी प्रकार कोई वृद्ध, दुबला, पतला, शिथिल अंगोंवाला और लकड़ी के टेके से चलने वाला व्यक्ति भी उस भारी वज़न को उठा सकने में समर्थ हो, तो मैं आपके इस कथन पर श्रद्धा कर सकता हूँ, कि जीव और शरीर दो भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं। यदि वह व्यक्ति उस भार को उठाने में समर्थ नहीं हो सकता, तो मेरा विश्वास ही सच्चा है, ऐसा मानना चाहिये।

श्री श्रमण बोले—अहो राजन्! एक शिल्पकला में निपुण और बलवान युवक, नई कावड़ और उसके दोनों नये सीकों में रखकर जितना भारी वज़न उठा सकता है, उतना भारी वज़न क्या वह पुरानी कावड़ और पुराने सीकों में रखकर उठा सकता है?

राजा—नहीं महाराज! नहीं उठा सकता है?

श्री श्रमण—ऐसा क्यों?

राजा—इसलिये, कि उसके उपकरण पुराने हैं।

श्री श्रमण—इसी प्रकार उस दुर्बलव्यक्ति के विषय में भी समझना चाहिये। जिस प्रकार, उपकरण पुराने होने के कारण वह युवक लोहे का भार उठा सकने में असमर्थ रहता है, उसी

तरह, उस वृद्ध का शरीर रूपी उपकरण इतना कमज़ोर हो गया है, कि उसके द्वारा वह बोझ उठाने में असमर्थ है इसलिये हे राजा! अब तुम श्रद्धा करो, कि जीव तथा शरीर अलग अलग हैं, एक नहीं।

राजा—किन्तु महाराज! मैं अभी एक और दृष्टान्त देता हूँ, जिससे आपको भी मालूम होजावेगा, कि शरीर और आत्मा एक ही चीज है, दो नहीं। एक वार का ज़िक्र है कि मै अपने दीवानख़ाने में बैठ था। इसी समय नगर का कोतवाल एक चोर को पकड़ कर मेरे पास लाया। मैने उस चोर को जीता तौल डाला, इसके बाद, उसका बध किया और फिर उसकी लाश को तौला। दोनों समय के तौल में, कुछ भी फ़र्क नहीं पड़ा। यदि, जीवित समय के तौल से, लाश का वज़न कुछ कम होजाता, तो मैं इस बात पर विश्वास कर सकता था, कि शरीर से जीव अलग है। किन्तु, दोनों समय का तौल समान ही ठहरा, इससे मेरा मत सिद्ध होगया, कि शरीर और जीव एक ही है।

श्री श्रमण—राजन्! तुमने कभी हवा से भरी हुई चमड़े की मशक देखी है क्या?

राजा—हाँ महाराज, देखी है।

श्री श्रमण—उस हवा भरी हुई मशक के तौल में और हवा निकल जाने पर किये हुए तौल में क्या कुछ फर्क होता है?

राजा—नहीं महाराज, कुछ भी फर्क नहीं होता।

श्री श्रमण—इसी प्रकार हे नरेश! जीव के विषय में भी समझो। जिस प्रकार हवा के भरने या निकाल देने से मशक का वजन तुम्हारे हिसाब से कम ज़्यादा नहीं होता, उसी प्रकार शरीर में जीव के रहने या उसके निकल जाने से वज़न में फ़र्क़ नहीं आता। वज़न में फ़र्क न पडने पर भी, जिस प्रकार तुम मशक से हवा को पृथक् मानते हो, उसी प्रकार इस बात पर भी श्रद्धा करो, कि शरीर से आत्मा पृथक् वस्तु है।

राजा—हे भगवन्! आप बुद्धिमान् हो, जिससे चतुरता पूर्वक बात जमा देते हो,। किन्तु, मैं अभी एक बात आपको ऐसी बतलाता हूँ, जिससे जीव का अस्तित्व न होना सिद्ध हो जाता है। एक बार मैं अपने दीवानख़ाने में बैठा था। इसी समय नगर का कोतवाल एक चोर को पकड़ कर मेरे पास लाया। मैंने, उस चोर के चारों तरफ़ सूक्ष्म दृष्टि से देखा, किन्तु मुझे कहीं भी जीव नहीं दिखाई दिया। इसके बाद, मैंने उस चोर के दो टुकड़े किये और भली भाँति चारों तरफ़ देखा किन्तु फिर भी जीव नहीं दीख पड़ा। फिर, मैंने उसके तीन टुकड़े करके जीव का निरीक्षण किया, किन्तु मुझे ऐसी कोई चीज़ नहीं दिखाई दी। तब मैंने उसके चार टुकड़े किये और जीव को खूब बारीक़ दृष्टि से ढूंढा, किन्तु मुझे वह दिखाई नहीं दिया। तब मैंने उसके बहुत से टुकड़े काट डाले

फिर भी जीव नहीं दिखाई दिया। यदि एक, दो, तीन, चार या बहुत से टुकड़े करते समय मुझे जीव के दर्शन हो जाते, तो मैं आपकी इस बात पर विश्वास कर सकता था, कि जीव और शरीर भिन्न भिन्न पदार्थ हैं। किन्तु जब इतनी ढूँढ़ खोज करने पर भी जीव नहीं दीख पड़ा तो मेरा विश्वास और अधिक दृढ़ होगया कि जीव वास्तव में कोई अलग चीज नहीं है। जो कुछ है, वह शरीर ही है।

श्री श्रमण—राजन्! तुम उसी प्रकार की भूल भरी रीति से जीव को ढूँढ़ते थे, जिस प्रकार एक लकड़हारे ने अरणि-वृक्ष को काटकर उसमें से अग्नि निकालने का प्रयत्न किया था।

राजा—महाराज! लकड़हारे की कथा क्या है?

श्री श्रमण—राजन्! एक वार कुछ लकड़हारे लोग लकड़ी काटने के लिये जंगल की तरफ़ चले। अपने आवश्यक साधनों के अतिरिक्त, भोजन बनाने की सामग्री और एक बर्तन में आग भी उन्होंने अपने साथ लेली। जंगल के किनारे पहुँच कर, उन्होंने अपने एक साथी से कहा, कि हम लोग जंगल में लकड़ी लेने जाते हैं और तुम यहीं रहकर भोजन तैयार करो। इस पात्र में अग्नि है ही, किन्तु यदि यह बुझ जाय तो अरणि की लकड़ी में से अग्नि निकालकर काम चला लेना। यों कहकर, वे लोग लकड़ी लाने की इच्छा से जंगल में चले गये। इधर उस मनुष्य ने सारी तैयारी करके जब चूल्हा सुलगाने के

लिये अग्नि पात्र उठाया, तो देखता है, कि उसमें की आग बुझ चुकी है। तब, वह अरणि की लकडी के पास गया और उसके चारों तरफ सूक्ष्म दृष्टि से अग्नि को ढूँढने लगा। किन्तु, इस तरह खोज करने पर जब उसे अग्नि नहीं दीख पड़ी, तो उसने कुल्हाडी उठाई और उससे उस लकड़ी के दो टुकडे कर डाले। किन्तु, आग फिर भी न दिखाई दी। तब उस पुरुष ने क्रम-क्रम से उसके बहुत से टुकड़े किये, फिर भी उसमें से अग्नि की प्राप्ति न हुई। तब, निराश होकर उसने कुल्हाडी एक तरफ डाल दी और कमर खोलकर पृथ्वी पर बैठ गया। इस समय, अपनी असमर्थता और साथियों के उपालम्भ की कल्पना करके, वह आर्त्तध्यान करने लगा। कुछ देर बाद, उसके साथी लोग जंगल से लकडी लेकर लौटे। उन्होंने जब इसे आर्त्तध्यान में देखा, तो पूछा—हे देवानुप्रिय! तुम इस तरह सिर पर हाथ लगाये हुए आर्त्तध्यान क्यों कर रहे हो? उसने उत्तर दिया, कि मुझे आपने भोजन बनाने को कहा था। आप लोगों के चले जाने पर मैंने देखा, तो आग बुझ चुकी थी। तब, मैंने आपके कथनानुसार अरणि की लकड़ी से आग निकालने का प्रयत्न किया और इस लकड़ी के सैंकड़ों टुकड़े कर डाले, फिर भी अग्नि नहीं मिली। अग्नि न मिलने के कारण ही मैं रसोई नहीं तैयार कर सका हूँ, इसका मुझे बडा दुःख है और इसी कारण मैं आर्त्तध्यान कर रहा हूँ।

उसका यह कथन सुनकर, उनमे से एक बुद्धिमान् मनुष्य बोल उठा—अहो मित्र! अरणि की लकडी के टुकड़े करने से नही, बल्कि उसे घिसने से अग्नि पैदा होती है। अग्नि उसमें अवश्य रहती है, किन्तु उसके दर्शन टुकड़े करने से नही हो सकते। ख़ैर, तुम जाओ और साथियों समेत स्नान तथा बलिकर्म करके शीघ्र वापस आओ, तब तक मै भोजन तैयार कर रखता हूँ। यों कहकर उस बुद्धिमान् ने अरणि की लकड़ी उठाई और उसे घिसकर उसने चूल्हा जलाया। इसके बाद जब तक अन्य लोग स्नानादि कार्यों से निवृत होकर लौटे; तब तक उसने विभिन्न प्रकार के भोजन तैयार कर रखे। उनके लौटते ही, उसने नाना प्रकार क स्वादिष्ट पदार्थ परोस दिये। उन्हें खा खाकर, वे लोग बड़े प्रसन्न हुए।

यों कहकर, श्री श्रमण फिर कहने लगे—राजन् उसी प्रकार तुम्हारी भी दशा है, कि मनुष्य शरीर को काट काट कर उसके टुकड़ों में तुम जीव की तलाश करते हो। जिस प्रकार, अरणि की लकडी में अग्नि होते हुए भी उस अज्ञानी मनुष्य को अग्नि की प्राप्ति नहीं हुई थी, उसी प्रकार शरीर के टुकड़े करके तुम्हें भी जीव नहीं दिखाई दिया। जिस प्रकार बुद्धिमान् लकड़हारे को यह बात मालूम थी कि अरणि में रहने वाली अग्नि का साक्षात्कार कैसे किया जा सकता है, उसी प्रकार जो बुद्धिमान तत्ववेत्ता हैं, वे जानते हैं, कि जीव शरीर में किस रूप में निवास करता है। इसलिये हे राजन्! तुम अब अपने बोलने के टेढ़े

ढग को छोड़कर, इस बात पर विश्वास करो, कि जीव और शरीर दो भिन्न भिन्न पदार्थ हैं, एक नहीं।

राजा बोले—भगवन्! आपका यह फ़रमाना, कि मैं टेढ़ा टेढ़ा बोल रहा हूं ठीक है। पहले ही प्रश्न के समय से मैंने यह बात अनुभव की थी, कि मै आपके साथ ज्यों ज्यों टेढ़ा (वक्र) बोलूँगा, त्यों त्यों मुझे ज्ञान की अधिक प्राप्ति होगी। यही कारण था, कि मैं अब तक आपसे टेढी मेढ़ी और उग्रतापूर्वक बातें करता रहा हूँ।

श्री श्रमण—राजा! क्या तुम्हें यह मालूम है, कि व्यवहार कितने हैं?

राजा—हाँ महाराज! मैं जानता हू कि व्यवहार चार प्रकार के होते हैं। एक वह, कि माँगने वाले को उसकी इच्छित वस्तु देता है, किन्तु वचन से सन्तुष्ट नहीं करता। दूसरा वह, जो देता तो कुछ भी नहीं है किन्तु वचनों के द्वारा सन्तोष करा देता है। तीसरा वह है, जो देता भी है और वाणी स सन्तोष भी पहुंचाता है। चौथा वह है, जो न कुछ देता ही है न वाणी के द्वारा ही सन्तोष पहुचाता है।

श्री श्रमण—राजन्? क्या तुम्हें यह भी मालूम है, कि इनमें से कौनसा मनुष्य व्यवहारी है और कौनसा अव्यवहारी है?

राजा—जी हाँ महाराज? अच्छी तरह जानता हूं। इनमें से जो पुरुष देता है, परन्तु वचनों से सन्तुष्ट नही करता,

वह व्यवहारी है। जो पुरुष देता तो नहीं है, किन्तु वचनों से सन्तुष्ट करता है, वह भी व्यवहारी है। जो पुरुष देता भी है और वचनों से भी सन्तुष्ट करता है, वह उत्कृष्ठ-व्यवहारी है। परन्तु जो पुरुष देता भी नहीं और वचनों से भी सन्तुष्ट नहीं करता, वह अव्यवहारी है?

श्री श्रमण बोले—हे राजा! इस चौथे पुरुष की तरह अव्यवहारी नहीं बनना चाहिये। यदि तुम अधिक कुछ नहीं कर सकते, तो कम से कम बात चीत करते समय नम्र शब्दों से तो अवश्य ही दूसरों का सन्तोष कराते रहना चाहिये।

राजा—महाराज? आप बड़े बुद्धिमान् और उपदेश देने में चतुर हैं। किन्तु, क्या आप शरीर में से जीव निकाल कर, मेरे हाथ पर रखे हुए आँवले की तरह दिखला सकते हैं? यदि, आप यह करने में सफल हो जाँय, तो मैं बिना किसी संकोच के यह स्वीकार कर लूंगा, कि जीव और शरीर दो भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं, एक नही।

इस अवसर पर, परदेशी राजा के पास ही, वायुकाया के सयोग से, एक (वनस्पति काय) तृण हिलडुल रहा था। उसकी ओर इशारा करके श्री केशीकुमार श्रमण ने पूछा—राजन्? क्या इस बनिस्पतिकाय को हिलती-डुलती तुम देख रहे हो?

राजा—जी हाँ महाराज, देख रहा हूं।

श्री श्रमण—तो इसे कोई देव चलाता है, असुर, किन्नर या गन्धर्व चलाता है?

राजा—नहीं महाराज, इस तृण को देव, असुर, गन्धर्व या किन्नर नहीं चलाते, बल्कि वायुकाया के योग से यह हिल रहा है।

श्री श्रमण—राजन्! जो वायुकाया स्वरूपी, सकर्म, सराग, समोह, सवेद, सलेश्या और सशरीर है, उस वायु-काया का रूप क्या तुम देख सकते हो?

राजा—नहीं महाराज! ऐसा होना कभी सम्भव नहीं है।

श्री श्रमण—राजन्! जब तुम, रूपी वायुकाय को नहीं देख सकते, तो मैं तुम्हारे हाथ में रखे हुए आँवले की तरह जीव को कैसे दिखला सकता हूं? छद्मस्थ-मनुष्य, दस स्थानों को सब भावों से नहीं जान सकते और न देख ही सकते हैं। वे दस स्थान ये हैं—१-धर्मास्तिकाया, २-अधर्मास्तिकाया, ३-आकाशास्तिकाया, ४-शरीर रहित जीव, ५-परमाणु पुद्गल ६-शब्द, ७-गन्ध, ८-वायु, ९-यह जिन होगा, १०-यह भवि-ष्य में सब दुःखों का अन्त करेगा। इन स्थानों को जानना छद्मस्थ की शक्ति से बाहर की बात है। हाँ, श्री केवली भगवान् इन्हें भली-भाँति से जानते और पूर्णरीति से देख सकते हैं। इसलिये, अब तुम श्रद्धा करो, कि जीव अन्य है और शरीर अन्य।

राजा—भगवन्! क्या हाथी और कीड़े के जीव एक समान ही होते हैं?

श्री श्रमण—हाँ राजन्! एक समान ही होते हैं।

राजा—तो भगवन्! क्या हाथी की अपेक्षा कीड़ा अल्प-कर्मवाला, अल्प क्रियावाला, अल्प-आश्रववाला, अल्पाहार और अल्पद्युतिवाला है? और हाथी अधिक कर्मवाला, अधिक-क्रियावाला, अधिक-आहारवाला और अधिक-द्युतिवाला है?

श्री श्रमण—हाँ राजन्! कीड़े की अपेक्षा हाथी अधिक-कर्मवाला, महान् क्रियावाला, और महान् द्युतिवाला है।

राजा—हे भगवन्! यदि इस तरह दोनों में भिन्नता है, तो दोनों के जीव एक समान कैसे हो सकते हैं?

श्री श्रमण—अहो राजन्! जब एक बन्द कमरे में जब दिया धरा जाता है तब वह कमरे भर में प्रकाश करता है। बाहर के पदार्थों को प्रकाशित नहीं करता। इसके बाद, यदि कोई उस दीपक को एक टोकरे से ढाँक दे, तो वह उस टोकरे के भीतर ही प्रकाश करता है, कमरे में या उससे बाहर नहीं। इसके बाद, किसी और छोटी चीज़ से उसे ढाँक दिया जावे, तो वह उस चीज़ में ही प्रकाश करेगा, टोकरे में नहीं। इस तरह, जिस छोटी या बडी चीज से उस दीपक को ढाँकते जाओगे, उसके भीतर ही उसका प्रकाश दीख पडेगा, अन्य चीज़ों तक वह नहीं पहुँचेगा। ठीक इसी प्रकार से जीव के

विषय में भी जानना चाहिये। जिस प्रकार, दीपक में प्रकाश करने की शक्ति तो मौजूद है, किन्तु जिस-जिस चीज़ से वह ढाँक दिया जाता है, उसी-उसी चीज के भीतर प्रकाश कर सकता है, उसी प्रकार जीव में सब शक्तियें मौजूद होते हुए भी, वह कर्मोदय से जिस शरीर का बन्ध करता है, उसी में रह कर उसे निर्वाह करना पड़ता है। जिस प्रकार, कमरे में रखा हुआ और टोकरे से ढँका हुआ दीपक एक समान ही है, परिस्थिति के अनुसार वह अपना प्रकाश थोड़ी या अधिक दूर तक फैला सकता है, उसी प्रकार से हाथी और कीड़े के जीव एक समान ही होते हैं। परिस्थिति के अनुसार, उनकी शक्ति का विकास हो सकता है। इसलिये, अब तुमको यह बात सच्चे हृदय से मान लेनी चाहिये, कि जीव और शरीर दो अलग-अलग चीज़ें हैं, एक नहीं।

यह सुन कर राजा बोला—अहो भगवन्! मेरे दादा का यह दृढ़-मत था, कि शरीर और जीव दो भिन्न-पदार्थ नहीं, बल्कि एक ही चीज़ है। उनके बाद, मेरे पिता का भी यही विश्वास था, कि जो शरीर है, वह जीव है और जो जीव है, वही शरीर भी है। शरीर और जीव दो अलग-अलग चीज़ें नहीं हैं। उनके बाद, मेरा तो यह दृढ़तापूर्वक निश्चित-मत था, कि शरीर और जीव एक ही चीज है अलग नहीं। यद्यपि, इस समय में कुछ-कुछ समझ सका हूं, कि शरीर और जीव दो अलग-अलग चीज़ें हैं, तथापि मैं अपने पूर्वजों के समय से

चली आती कुलरीति का त्याग नहीं कर सकता।

श्री श्रमण—राजन्! जिस प्रकार लोहा उठाने वाले पुरुष को अन्त में पश्चात्ताप करना पड़ा था, वैसा ही पश्चात्ताप तुझे भी करना पड़ेगा।

राजा—हे स्वामिन्! उस लोहा उठाने वाले की क्या कथा है?

श्री श्रमण—राजा! एक बार कुछ धन के लोभी मनुष्य धन की तलाश करने जंगल में गये। अपने साथ बहुत से साधन तथा भोज्य-सामग्री लेकर, उन्होंने उस भयङ्कर वन में प्रवेश किया। वे लोग, उस वन में अभी कुछ ही दूर गये थे, कि उन्हें एक बड़ी भारी लोहे की खान मिली। वहाँ चारों तरफ़ लोहा फैला हुआ था। इस लोहे को देखकर, वे अपने-अपने हृदयों में बड़े सन्तुष्ट हुए और आपस में विचार करने लगे, कि यह लोहा बड़ा उपयोगी होता है, इसलिये हम लोगों को इसे ले चलना चाहिये। यों सोचकर, उन लोगों ने लोहे की गठड़ियें बांधी और अपने-अपने सिर पर रख कर आगे चले। यहां से चल कर, वे लोग ज्यों ही कुछ दूर गये, त्यों हीं उन्हें एक पीतल की खान मिली। उसे देखकर वे लोग विचारने लगे, कि लोहे की अपेक्षा पीतल अधिक मूल्यवान् है, इसलिये हमें लोहा छोड़ कर पीतल की गठरी बाँध लेनी चाहिये। यह सोचकर, सब लोगों ने, अपने पास का लोहा

तो वहीं डाल दिया और पीतल की गठरियें बाँध लीं। किन्तु, उनमें से एक पुरुष ने, लोहे का भार छोडकर पीतल की गठरी बांधना स्वीकार नहीं किया। तव उसके साथियों ने उससे कहा,—हे मित्र! लोहे की अपेक्षा पीतल अधिक मूल्यवान् है और थोडा सा पीतल देकर, उस के वदले में वहुत-सा लोहा मिल सकता है। इसलिए तुम लोहे को छोड़कर, पीतल की गठरी बांध लो। किन्तु, उस पुरुष ने इसे स्वीकार नहीं किया और कहा, कि मैं वड़ी दूर से इस लोहे को यत्नपूर्वक वाँध कर ला रहा हूँ, इसलिये इसे हरगिज़ नहीं छोड़ सकता। उसका यह उत्तर सुन कर, उसके साथियों ने उसे समझाने का पुनः प्रयत्न किया, किन्तु जव वह किसी तरह भी न माना, तव सव लोग आगे चलने लगे। कुछ और आगे जाने पर, उन्हें ताँबे की खान मिली। वहाँ, सव ने पीतल छोड़ कर ताँवा वाँध लिया। किन्तु, उस पुरुष ने अनेक प्रकार से कहने सुनने और समझाने पर भी अपना लोहा न छोड़ा। आगे जाने पर चाँदी की खान मिली, जहाँ से और सव ने ताँवा छोड़ कर चाँदी बाँध ली, किन्तु उस पुरुष ने अपना लोहा न छोडा। इसी तरह आगे चल कर सोने की, फिर पन्नों की और अन्त में हीरों की खान आई। सब लोगों ने, इन खानों पर क्रम-क्रम से पुरानी चीज़ें छोड़ कर नई चीज़ें ग्रहण कर लीं, किन्तु उस वुद्धिहीन मनुष्य ने अपना लोहा छोड़ना स्वीकार नहीं किया। नगर में पहुंच कर. सव लोगों

ने अपने-अपने हीरे बेच डाले और उनके मूल्य से मौज करने लगे। इधर जब उस लोहे वाले ने अपना लोहा बेचा, तो उसे सिर्फ़ इतने पैसे मिले, कि जिनसे वह भोजनादि की सामग्रीयें ही ख़रीद सका। अपने पैसे ख़तम होने पर, जब उसने अपने साथियों की दशा का पता लगाया, तो उसे मालूम हुआ कि वे लोग बड़े आनन्द में जीवन व्यतीत कर रहे हैं। अपने साथियों की यह दशा जान कर, वह व्यक्ति अपनी मूर्खता पर पश्चात्ताप करता हुआ कहने लगा कि मैं बड़ा अभागा और पुण्य रहित हूँ। यदि मैं, अपने साथियों का कथन मान कर, उन्हीं की तरह उच्च वस्तु ग्रहण करता जाता और हल्की चीज़ें छोडता जाता तो आज मैं भी आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत करता। किन्तु, मैं तो प्राचीन चीज़ का इतना प्रेमी बन बैठा था, कि वस्तु की उत्तमता या निकृष्टता की परीक्षा किये बिना ही उसे ग्रहण किये रहा।

यह कह कर, श्री श्रमण फिर कहने लगे—हे राजा परदेशी! यदि तुम अपनी तीन पीढ़ियों से ग्रहण की हुई नास्तिकता को केवल इसलिये नहीं छोडना चाहते, कि तुम्हारे बाप-दादाओं की ऐसी ही भावना थी और अब तक तुम भी वैसे ही विचार रखते थे, तो यह तुम्हारी भूल है। अन्त में, तुमको भी उसी तरह पछताना पड़ेगा, जिस तरह मैं लोहे वाले की कथा कह गया हूं। यदि, तुम उस तरह के पश्चात्ताप से बचना चाहो, तो, जिस प्रकार शेष बुद्धिमानों ने, अच्छी

अच्छी चीजों को, पुरानी चीजों का मोह छोड कर ग्रहण किया था उसी प्रकार तुम भी पुरानी नास्तिकता का मोह छोड कर परीक्षापूर्वक सद्धर्म को ग्रहण करो।

यह सुन कर, राजा परदेशी ने, श्री केशीकुमार श्रमण के गुणों का वर्णन करते हुये उन्हें वन्दना की और नम्रतापूर्वक यों कहने लगा—अहो भगवन्! मैं उस लोहा उठाने वाले और उसके सन्मुख हीरों की भी परवाह न करने वाले पुरुष की तरह पश्चात्ताप करने का अवसर न आने दूंगा। मैं आप से केवली प्ररूपित-धर्म श्रवण करना चाहता हूँ।

राजा को, इस प्रकार उद्यत देख, श्री श्रमण ने कहा—राजन्! जिससे तुम्हें सुख हो, वही करो।

यों कहकर, श्री केशीकुमार श्रमण ने, राजा परदेशी को दया, दान आदि का धर्मोपदेश दिया, जैसा कि चित श्रावक को दिया था। उस धर्मोपदेश को श्रवण करके, राजा परदेशी ने गृहस्थ धर्म* (आनन्द की तरह अभिग्रह सहित श्रावक बारह व्रत)

---

* आनन्द श्रावक की भाँति परदेशी राजा ने भी अभिग्रह सहित बारह व्रतों को धारण किया। यह नियम केवल आनन्द और परदेशी के लिये ही लागू नहीं किन्तु बारह व्रतधारी प्रत्येक श्रावक के लिये आवश्यक सूत्र के प्रमाणानुसार अनिवार्य है।

"तत्थ समणोवासो पुव्वामेव मिच्छत्ताओ पडिक्कमइ सम्मत्तं उवसंपज्जइ नो मे कप्पइ अज्ज अन्नउत्थिएवा

अँगीकार किया। व्रत ग्रहण करने के पश्चात्, राजा परदेशी उठा और पुन सेयविया नगरी को जाने लगा।

यह देखकर, श्री श्रमण ने कहा—राजन्? क्या तुम्हें मालूम है, कि आचार्य कितने प्रकार के होते हैं?

राजा—हाँ भगवन्! मै जानता हूँ, कि आचार्य तीन प्रकार के होते हैं। कलाचार्य, शिल्पाचार्य, और धर्माचार्य।

श्री श्रमण—राजन्? क्या तुम्हें यह भी मालूम है, कि इनमें से किसके साथ कैसी विनयभक्ति करनी चाहिये?

तेसिं असणं वा पाण वा खाइमंवा साइमंवा दाऊंव्वा-अणुप्प दाऊंवा नन्नत्थ १—रायाभियोगेण, २—गणाभियोगेणं, ३—बलाभियोगेणं, ४—देवाभियोगेणं, ५—गुरुनिग्यहेणं, ६—वित्तिकन्तारेणं इत्यादि (आवश्य-सूत्र)

आज से (अज्जपभिइ) किसी भी अन्य तीर्थी को गुरुबुद्धि से वन्दना, सत्कार, दान आदि करना टीकाकार ने भी निषेध किया है किन्तु अनुकम्पा (दया) से देना निषेध नहीं। टीका:—"अयं च निपेधो धर्म-बुध्यैव करुणाया तु दद्यादपि" अर्थात् यह दान देने का निषेध धर्मबुद्धि (गुरुबुद्धि) से ही है किन्तु अनुकम्पा (दया) से त देना ही चाहिये।

जैसे:—'कृपणोऽनाथ दरिद्रे व्यसन प्राप्ते च रोगशोकहते यद्दीयते कृपार्थादनुकम्पा तद् भवेद्दानम्" अर्थात् कृपण, अनाथ, दरिद्री, दुःखी रोगी और शोकित जीव को जो दिया जाता है उसे अनुकम्पा दान कहते है।

राजा—हाँ स्वामिन् ? यह भी मुझे मालूम है। इनमें से कलाचार्य और शिल्पाचार्य को सुन्दर-सुन्दर भोजन कराना, सुगन्धित पदार्थों से स्नान कराना, बढ़िया-बढ़िया पुष्पों से उन्हें सजाना और यावज्जीवन उनसे प्रीति रखना तथा उन्हें ऐसी जीविका देना, जिससे उनके बेटे पोते तक खूब आनन्द में रह सकें। और जब धर्माचार्य दिखाई दें, तो उन्हें वन्दन नमस्कार करना, उनका सत्कार सम्मान करना, उन्हें कल्याणकारी और ज्ञानवन्त जानकर उनकी पूजा करना, उन्हें शुद्ध भोजन पानी प्रदान करना तथा उनकी आवश्यकता की वस्तुयें जैसे—पाट पाटले, शैय्या आदि के लिये निमन्त्रित करना चाहिये।

श्री श्रमण—अहो परदेशी राजा ! यह जानते हुए भी, तुमने मेरे साथ टेढा व्यवहार किया और अन्त में, अपने अपराध की क्षमा मांगे विना ही वापिस सेयविया नगरी को जा रहे हो। क्या तुम जैसे बारह व्रत धारी श्रावक के लिये यह उचित है, कि अपनी भूल की क्षमायाचना किये बिना ही चले जाओ ?

राजा—भगवन् ! मैं इस बात को जानता हूं, कि मैंने आपके साथ कड़ा व्यवहार किया है और यह भी जानता हूँ, कि मुझे इसके लिये क्षमा माँगनी चाहिये। किन्तु, मेरी यह इच्छा है, कि मैं धूम धाम से कल प्रात काल अपने परिवार

तथा राजपुरुषों सहित आपको वन्दन नमस्कार करूँ और अपने अपराधों के लिये क्षमा मांगूँ ।

यों कहकर, राजा परदेशी अपने स्थान को वापिस लौट गया आर दूसरे दिन सूर्योदय होने पर, चतुरंगिणी सेना सजाकर, अपने परिवार के पुरुषों तथा अन्तःपुर की रानियो सहित वन्दना करने निकला। इस तरह धूम धाम से चलते चलते, सब लोग श्री केशीकुमार श्रमण की सेवा में उपस्थित हुए। वहाँ पहुंचने पर, राजा ने पांच प्रकार का अभिगमपूर्वक वन्दन नमस्कार किया और श्री श्रमण से अपने अपराधों के लिये बारम्बार क्षमा मांगी।

इसके बाद, श्री केशीकुमार श्रमण ने, उस बड़ी भारी सभा के सन्मुख, राजा परदेशी तथा उसकी सूर्यकान्ता आदि रानियों को धर्मापदेश दिया। धम श्रवण कर चुकने पर, राजा उठा और पुन विधिवत् वन्दन नमस्कार करके सेयविया नगरी जाने के लिये तैयार हुआ। इस अवसर पर, श्री श्रमण बोले—राजन! तुम अब रमणीय होगये हो, किन्तु आगे चलकर पुन. अरमणीय मत होजाना। जिस प्रकार से वनखंड नाटकशाला, गन्ने का खेत, और अनाज का खलिहान पहले रमणीय दीखता है और अन्त में अरमणीय होजाता है, उसी प्रकार से कहीं तुम भी पीछे से अरमणीय मत होजाना।

राजा—भगवन्! इसका क्या आशय है?

श्री श्रमण—राजन्! जब वन में पत्ते, फूल, फल और हरियाली की शोभा होती है, तब वह रमणीय दीखता है और जब ये नहीं होते, तब वही वन, अरमणीय दीखने लगता है। इसी तरह जब नाटकशाला में गाना बजाना और खेल कूद होता है, तब तो वह रमणीय मालूम होती है और जब ये कार्य वहाँ नहीं होते, तो वही नाटकशाला अरमणीय मालूम होने लगती है। त्योंही जब गन्ने के खेत में गन्ना खड़ा होता है, तब वह रमणीय मालूम होता है और जब गन्ना नहीं रहता तब वही खेत अरमणीय जान पड़ता है। इसी प्रकार से, जब तक खलिहान में अनाज के ढेर लगे रहते हैं, तब तक वह रमणीय होता है और ज्योंही अनाज उठ जाता है, त्योंही वह अरमणीय दीखने लगता है। इसलिये तुम इस बात का अच्छी तरह ध्यान रखना, कि ऊपर कही हुई चार बातों की तरह कहीं तुम भी अरमणीय मत होजाना।

यह सुनकर राजा बोला—अहो भगवन्! मैं इन चार चीज़ों की तरह अरमणी कभी न होऊँगा। मैं सेयविया आदि सात हज़ार ग्रामों के चार भाग करूँगा। इन चारों में से, एक भाग हाथी घोड़ा तथा सेना के लिये, दूसरा भाग राज्य के ख़जाने के लिये और तीसरा भाग रानियों के खर्च के लिये छोड़ दूंगा। शेष चौथे भाग से एक बड़ी भारी दानशाला बनवाऊँगा, जिस में विविध प्रकार के भोजन तैयार करवाकर, श्रमणों, ब्राह्मणों, भिक्षुकों, पथिकों और परिव्राजकों को दान करूँगा तथा शील-

व्रत, प्रत्याख्यान और पौषधोपास करता हुआ विचरूंगा। यों कहकर, परदेशी राजा पुनः अपने घर को लौट गया।

जो लोग साधु के अतिरिक्त, संसार के सभी प्राणियों को कुपात्र, एवं उन्हें दयापूर्वक दिये हुए दान को भी कुपात्र दान कह कर उसे मांस भक्षण और दुराचार के सदृश पाप मानते हैं, उन्हें परदेशी राजा की दानशाला खुलवाने की प्रतिज्ञा को ध्यान पूर्वक समझना चाहिये। परदेशी राजा एक बारह व्रतधारी और जैनधर्म का मर्म समझा हुआ श्रावक तथा श्रुत केवली श्री केशीकुमार मुनि चार ज्ञान के धारक थे। ऐसे महामुनि के सामने इतने बड़े श्रावक द्वारा की गई प्रतिज्ञा से यह बात स्वयं ही सिद्ध होजाती है. कि दीन दुखियों को अनुकम्पा लाकर दान देना, एकान्त पाप नही है। अनुकम्पा दान यदि माँस भक्षण और दुराचार सेवन के सदृश पाप कार्य होता तो जब राजा परदेशी ने दानशाला खुलवाने की प्रतिज्ञा की थी, उस समय श्री श्रमण ने उन्हें रोका क्यों नही ?

यदि कोई यह कहे कि राजा परदेशी ने भूल से ऐसी प्रतिज्ञा की थी तो यह भी ग़लत है। यदि कोई श्रावक भूल से मुनि के सामने यह घोषित करे कि मैं हिंसा झूठ या चोरी करूँगा तो मुनि फ़ौरन ही उसका विरोध करते हैं। इस नियम के अनुसार, जब राजा परदेशी ने दानशाला खुलवाने की प्रतिज्ञा की थी, उस समय यदि केशीकुमार श्रमण उसकी उस

प्रतिज्ञा को एकान्त पाप या चोरी, व्यभिचार आदि की तरह बुरा कार्य समझते तो बिना विलम्ब किये राजा परदेशी से कहते – "हे देवानुप्रिय! तुमने अभी मुझसे बारह व्रत ग्रहण किये हैं और अभी ऐसी पाप पूर्ण प्रतिज्ञा करने लगे। यह दानशाला का कार्य तो एकान्त पाप तथा मैथुनादि के सदृश कुकृत्य है। तुमने इसकी प्रतिज्ञा करके जो भूल की है, उसके लिये दण्ड लो"। किन्तु, मुनि ने कुछ भी नहीं कहा, इससे स्पष्ट ही सिद्ध है, कि दानशाला खुलवाने का कार्य एकान्त पाप नहीं था। मुनि लोग एकान्त पाप का सदैव ही निषेध करते हैं, किन्तु पुण्य का नहीं। इसलिये साधु के अतिरिक्त संसार के अन्य प्राणियों पर दयापूर्वक दान देने को एकान्त-पाप कहना आत्मवंचना यानी अपने आपको धोखा देना है।

इसके पश्चात् उसने अपने राज्य के चार भाग किये और तीन भागों की अन्य व्यवस्था करके, चौथे-भाग से एक बड़ी भारी दानशाला बनवाई, जिसमें बहुत से नौकर रख कर, विविध प्रकार का भोजन तैयार करवाने और साधु ब्राह्मणों को दान देने लगा। इस समय से, परदेशी राजा श्रमणोपासक हुआ और जीव अजीव आदि तत्वों को जानता हुआ, सात्विक जीवन व्यतीत करने लगा। जिस दिन से राजा ने सम्यक्त्व* ग्रहण किया, उस दिन से वह राज्य, राष्ट्र, सेना,

---

* सम्यक् दृष्टि के लक्षण

(१) सम—आत्मवत् सर्वभूतेषु (सब जीवों को अपना जैसा मानना)

हाथी, घोड़े, खज़ाना और अन्त.पुर से कुछ कम मोह रखने लगा। इस बात का पता जब उसको सूर्यकान्ता नामक रानी को लगा, तब उसने विचार किया, कि राजा इस प्रकार विरक्त से रहते हैं, तो इन्हें किसी शस्त्र अथवा विष के द्वारा मार डालना चाहिये और अपने सूर्यकान्त कुमार को राजा बना कर स्वयं मुझे सारे राज्य का प्रबन्ध अपने हाथ में ले लेना चाहिये। यह विचार कर, उसने अपने सूर्यकान्त कुमार को

सुख दुःख में, शत्रु मित्र में, हर हालत में एक सी भावना का अनुभव करना विवेक बुद्धि से तत्वों का समझना।

(२) सम्वेग—निवृत्ति भाव, उदासीन भाव, इन्द्रियों के भोगादि में अनासक्त-अगृद्धभाव।

(३) निर्वेद—आरम्भ (पाप क्रिया) परिग्रह (ममत्व बुद्धि धन वैभवादि) से निर्वर्तने की भावना।

(४) अनुकम्पा—किसी जीव को (प्राणी मात्र) को दुःखी देखकर उनके दु ख दूर करने की कोशिश करना तथा दिल में दया भाव आजाना और उनके दुःख दूर करने के लिये हृदय दया से द्रवित हो जाना।

(५) आस्था—श्रद्धा, सत्‌देव, गुरुधर्म, के कथन पर श्रद्धा विवेक पूर्ण अटलविश्वास।

राजा परदेशी के श्रावक होने के बाद यह पाँचों बातें उसमें मौजूद हैं यह इस चरित्र से विदित है।

बुलाया और उससे कहा—बेटा! जिस दिन से राजा जी श्रमणोपासक हुए हैं, उस दिन से राज्य तथा अन्तःपुर आदि के भोग का अनादर करने लगे हैं। इसलिये, तुम किसी प्रकार से राजा का वध कर डालो और खुद राजा पद को शोभा बढ़ाओ।

माता का यह कथन सुन कर, सूर्यकान्त कुमार ने उसके वाक्यों का आदर नहीं किया और कुछ भी उत्तर दिये बिना वह बिलकुल मौन रहा। यह देख कर रानी को भय हुआ, कि कहीं कुमार मेरी यह बात राजा पर न प्रकट कर दे। इस लिये उसने निश्चय किया, कि यथा सम्भव शीघ्र राजा का अन्त कर दिया जावे। जिसमे, न तो भेद फूटने का ही भय रहे और न मेरी इच्छा ही बाक़ी रह जाय। यों सोच कर, वह राजा के वध कर डालने का मौक़ा ढूंढ़ने लगी। एक बार उसने मौक़ा देखकर भोजन, पानी तथा वस्त्र, मालाएं आदि सभी विष मिश्रित तैयार कीं। राजा, ने स्नान करके, जब वस्त्र माँगे, तब रानी ने वही विषैले कपड़े और मालाएँ उन्हें पहनने को दीं। उन्हें पहन कर, जब राजा भोजन करने बैठे, तो रानी ने उन्हें वही विष मिला हुआ भोजन परोस दिया। उस भोजन का उपयोग करते ही, राजा के शरीर में, भीतर-बाहर दोनों तरफ से ज़हर का प्रभाव हो गया और वेदना प्रारम्भ होगई। थोड़े ही समय में, राजा के शरीर में असह्य जलन होने लगी और उसका दम घुटने लगा।

अपनी यह दशा देखकर राजा समझ गया, कि सूर्यकान्ता रानी ने मुझे विष दिया है। किन्तु, उस पर बिना जरा भी क्रोध या द्वेष किये ही, समभाव धारण किये हुए राजा पौषधशाला में आया। वहाँ आकर, उसने पौषधशाला पूँजी, पृथ्वी का प्रतिलेखन किया और दर्भ का सथारा बिछा, उस पर पूर्व दिशा में मुख करके, आसन लगा कर बैठ गया। तत्पश्चात्, दोनों हाथ जोड कर, अपने मस्तक के आस-पास घुमा कर बोला, कि श्री अरिहन्त भगवान्, जो मोक्ष को पधार चुके हैं, मेरा उन्हें नमस्कार है। मेरे पूज्य धर्माचार्य, तथा धर्मोपदेशक श्री केशीकुमार श्रमण को मेरा नमस्कार है। मैं, यहाँ बैठा हुआ उन्हें वन्दन करता हूं और वे अपने अपने स्थान से मुझे देख रहे हैं। इस प्रकार वन्दन-नमस्कार करके, राजा ने आलोचना की और संसार के प्राणिमात्र से अपने अपराधों के लिये क्षमा मांगी तथा उन्हें क्षमा दी।

इसके पश्चात् राजा ने विचार किया, कि मैंने श्री केशी-कुमार श्रमण से स्थूल, हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन, और परिग्रह का प्रत्याख्यान किया था और अब भी मैं उन्ही महापुरुष को याद करके इन सब का त्याग करता हूँ। मैं, अठारह ही पापों का प्रत्याख्यान करता हूं और यावज्जीवन के लिये अशन, पान, खादिम तथा स्वादिम का त्याग करता हूं। और जो यह सुन्दर शरीर है, इसे भी अन्तिम-श्वास के पश्चात् मैं छोड़ता हूं।

इस तरह आलोचना तथा त्याग प्रत्याख्यान कर चुकने पर, राजा का शरीर छूट गया और उसका जीव सौधर्म देवलोक के सूर्याभ नामक विमान में सूर्याभदेव होकर उत्पन्न हुआ। वहां, इस सूर्याभदेव को ऐसी देवऋद्धि देवद्युति और दिव्यशक्ति प्राप्त हुई है।

यह सुन कर श्री गौतम ने पूछा—हे भगवन्! उस लोक में सूर्याभदेव की स्थिति कितनी होगी?

श्री भगवान्—गौतम! चार पल्योपम की स्थिति है।

श्री गौतम—भगवन्! सूर्याभदेव की आयु, भव और स्थिति का क्षय होने पर यह कहां जावेगा?

श्री भगवन्—गौतम! यह महाविदेह में एक अच्छे कुल में उत्पन्न होगा, जहाँ इसका नाम दृढ़प्रतिज्ञ होगा। वहां, इसका विधिवत् पालन होगा और इसे ७२ कलाओं की शिक्षा मिलेगी। युवा अवस्था होने पर दृढ़प्रतिज्ञ के माता पिता उसे विवाह बन्धन में बांधने का प्रयत्न करेंगे, किन्तु वह उस से सर्वथा बचकर संयम ग्रहण कर लेगा। ईर्य्या समिति आदि साधु के समस्त गुणों का पूर्णरूपेण पालन करता हुआ अन्त में वह केवल ज्ञान भी प्राप्त कर लेगा। अन्त में, श्री दृढ़प्रतिज्ञ केवली भगवान बहुत समय तक संसार में विचर कर प्राणियों का कल्याण करते हुए अपना आयुष्य पूर्ण करके सिद्धगति को प्राप्त हो जावेंगे।

यह सुन कर श्री गौतम स्वामी अपने हृदय में बड़े प्रसन्न हुए और भगवान को वन्दन नमस्कार करके पुन धर्म ध्यान आदि कार्यों में निमग्न होगये।
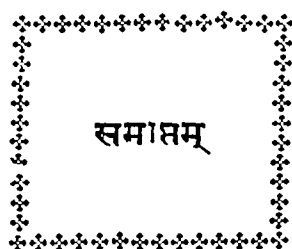
समाप्तम्

पंडित प्रेमशंकर शर्मा के प्रबन्ध से
श्री ओंकार प्रिन्टिंग प्रेस; अजमेर में मुद्रित।

आभार-प्रदर्शन

जिन सज्जनों ने पुस्तक छपने से पहले ही उसे खरीद लिया है, कार्य्यालय उनका आभारी है। आशा ही नहीं किन्तु पूर्ण विश्वास है कि अन्य महानुभाव भी कार्य्यालय से आगे निकलने वाली पुस्तकों के ग्राहक बनकर और प्रचारार्थ थोक पुस्तकें लेकर माला के ध्येय की पूर्त्ति करेंगे।

(१) रायसाहब सेठ लक्ष्मणदासजी, जलगाँव — १०० पुस्तकें

(२) सेठ मिश्रीमल जौहरीमलजी लोढा, नयाबाजार अजमेर — ५० पुस्तकें

(३) खूबचन्दजी चण्डालिया, सरदारशहर — ५० पुस्तकें

(४) सेठ सुखलालजी ओस्तवाल, लोहावट — ५० पुस्तकें

(५) सेठ नथमलजी दमाणी, बीकानेर — ५० पुस्तकें

(६) सेठ तनसुखदासजी दूगड, सरदारशहर — ५० पुस्तकें

यह सुन कर श्री गौतम स्वामी अपने हृदय में बड़े प्रसन्न हुए और भगवान को वन्दन नमस्कार करके पुन धर्म ध्यान आदि कार्यों में निमग्न होगये ।
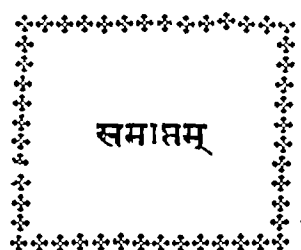
पंडित प्रेमशंकर शर्मा के प्रबन्ध से
श्री ओंकार प्रिन्टिग प्रेस, अजमेर में मुद्रित ।

आभार-प्रदर्शन

जिन सज्जनों ने पुस्तक छपने से पहले ही उसे खरीद लिया है, कार्य्यालय उनका आभारी है। आशा ही नहीं किन्तु पूर्ण विश्वास है कि अन्य महानुभाव भी कार्य्यालय से आगे निकलने वाली पुस्तकों के ग्राहक बनकर और उदारता से थोक पुस्तकें लेकर माला के ध्येय की पूर्त्ति करेंगे।

(१) रायसाहब सेठ लक्ष्मणदासजी, जलगाँव — १०० पुस्तकें

(२) सेठ मिश्रीमल जौहरीमलजी लोढा, नयाबाजार अजमेर — ५० पुस्तकें

(३) खूपचन्दजी चण्डालिया, सरदारशहर — ५० पुस्तकें

(४) सेठ सुखलालजी ओस्तवाल, लोहावट — ५० पुस्तकें

(५) सेठ नथमलजी दमाणी, बीकानेर — ५० पुस्तकें

(६) सेठ सनसुखदानजी दूगड, सरदारशहर — ५० पुस्तकें

Only Title print at The Fine Art Printing Press, Ajmer

ॐ

॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥

ज्ञान बहोत्तरी।

तथा

सम्यक्तरा ६७ बोल।

प्रसिद्धकर्त्ता—

भैरोंदानजी तत्पुत्र जुगराज

ज्ञानपाल सेठिया।

बीकानेर निवासी।

JUGRAJ GAINPAL SETHIA,

Bikaner Rajputana.

J 8 Ry

मूल्य सार शिक्षा

प्रति २०००

वीर संवत् २४४९

विक्रम संवत् १९७९

ई० सन १९२२

जीवन कार्य्यालय अजमेर की मुख्य पुस्तकें

अनुकम्पा विचार	॥)	जैन-धर्म में मातृ पितृ सेवा	-)
आदर्श क्षमा	-)॥	शालिभद्र चरित ३ भाग	।≡)
अर्जुनमाली (राधेश्याम तर्ज में)	=)	मिल के वस्त्र और जैन-धर्म	-)

छपनेवाली पुस्तकें—नंदण मनिहार, जिनरिख जिनपाल, मेघकुमार, मेघ-रथ राजा, चूलणी पिता, लैस्या विचार, लब्धी विचार, पाप से बचो।

निम्न लिखित पुस्तकों पर कमीशन नहीं मिलेगा—

अस्तेयव्रत	=)	सद्धर्म-मण्डन	२॥)	सकडाल पुत्र कथा	।)
सत्यव्रत	≡)	सुबाहू कुमार	।)	तीर्थंकर चरित्र	
ब्रह्मचर्य्यव्रत	।)	धर्मव्याख्या	=)	सत्यमूर्त्ति हरिश्चन्द्र तारा	॥)
अहिंसाव्रत	।)	वैधव्य दीक्षा	-)		

जीवन ग्रन्थमाला

यस्यास्ति सद् ग्रन्थ विमर्शभाग्यं, किं तस्य शुष्कैश्चपलाविनोदैः।

जिसके भाग्य मे उत्तमोत्तम ग्रन्थों का अनुशीलन करना (वाचन विचारन) बदा है उसके लिये लक्ष्मी के शुष्क विनोद किस काम के।

उद्देश्य—नवयुवकोपयोगी साहित्य, आध्यात्मिक तथा प्राचीन ग्रन्थ इतिहास दया [illegible] विचार, नवयुग सन्देशादि का निर्माण करना।

(१) ५) रुपये जमा कराने वाले को तीन साल के बाद ५॥) मिलेंगे तथा स्थायी ग्राहक भी समझा जायगा।

(२) ५) रुपये पुस्तको के लिये पेशगी देनेवाले को ६।) की पुस्तकें मिलने के बाद स्थायी ग्राहक भी समझा जायगा।

(३) १) रू० जमा करानेवाले सज्जन स्थायी ग्राहक समझे जायँगे उन्हे सब पुस्तकें पौने मूल्य में मिलेंगी तथा पुस्तक छपने की सूचना मिलती रहेगी।

पत्र व्यवहार का पता—सञ्चालक—पण्डित छोटेलाल यति,

जीवन-कार्यालय, अजमेर.

Only Title print at The Fine Art Printing Press, Ajmer

॥ श्रीजिनाय नमः ॥

अथ श्री ज्ञान वहोतरि लिख्यते

दोहा ।

प्रणमुं श्री परमातमा, धर सद्गुरु को ध्यान ।
कहुंक आतम बोधको, करुं बहुतर ज्ञान ॥ १ ॥

१ पहले बोले—महा दुर्लभ मनुष्य जन्म पाय करके आपणि आत्मा आलस्य प्रमाद और मोह में दिन गमावे सो महा मूर्ख ।

२ दूसरे बोले—धर्म की सर्व सामग्री पायके आत्माको साधन नहीं करे सो महा मूर्ख ।

३ तीसरे बोले—पुन्य रूप पूंजि सो आप

❋ सूचना ❋

दोहा—

पाणी पास मत राखो, तेल अग्नि सुं दूर।
मूर्ख हाथ मत दीजिये, जोखम खाय जरूर ॥१॥

यह पुस्तक जयणासे वांचे और जयणासे रखे इसमें कोई अशुद्धि रहगई हो तो सज्जन सुधार कर वांचे और कृपा कर हमको सूचना दें यही प्रसिद्ध कर्त्ता की नम्र विनती है।

श्री० एल० प्रेस २।२ मछुआबाजार ष्ट्रीट, कलकत्ता में
बांकेलाल वर्मा द्वारा मुद्रित।

करी दुख आवे, तिवारें आत्मारें विषे ज्ञान विचारी शीतलता नहीं करे सो महा मूर्ख ।

९ नवमे बोले—साता वेदनीरे उदय करी सुख आवे तिवारें अभिमान करे. धर्मरत्न विशार देवे सो महा मूर्ख ।

१० दशमे बोले—ज्ञान वधावा को उपाय तो नहीं करे और संसार वधावा का घणा खोटा उपाय करे सो महा मूर्ख ।

११ इग्यारमे बोले—उत्तम ज्ञानी की संगत पाय कर आपणि आत्मा राग द्वेष रहित निर्मल नहीं करे. अथवा उपाय नहीं करे सो महा मूर्ख ।

१२ बारमे बोले—ज्ञानवानरी सेवा भक्ति करीने आपणि आत्मा उज्वल पाप रहित न करे सो महा मूर्ख ।

१३ तेरमे बोले—अन्न पचखाणरो नियम रहणा नहीं रागे कष्ट पड़े तिवारें धर्म ने छोड़ देवे सो महा मूर्ख ।

१४ चवदमे बोले—संसारो कामारो तो नियम राखे, और आखा दिन मांहि दोय घड़ी धर्म्म कार्य्य करने को नियम राखे नहीं सो महा मूर्ख।

१५ पन्नरमें बोले—कोई उत्तम ज़ीव धर्म रो उपदेश देवे, हितरी शिक्षा देवे तिण उपर रीस करे सो महा मूर्ख।

१६ सोलमे बोले—ज्ञान रत्न पायो तिणसुं संसार असार जाणे और मोह ममता दुखदाई, संसार बृद्धि रा कारण जाणया फिर मोह दुखदाई संसाररी बृद्धिरा कारण बढ़ावे सो महा मूर्ख।

१७ सतरमे बोले—थोड़ासा जीववारे वास्ते महा आरंभ करे, कषाय करे, पर जीवां ने दुख उपजावे, अथवा घणा भय उपजावे सो महा मूर्ख।

१८ अट्ठारमे बोले—आपणो चैतन्य अनादि काल रो काम क्रोध, लोभ मोह, अज्ञान रूप

बंधन में पड्यो है तिणने छोडावारो उपाय नहीं करे सो महा मूर्ख ।

१९ उन्निसमें बोले—पापी दुष्टी जीव पारकी ऋद्धि तथा घणो परिवार देखी आप पोते मुरे, और मनमें खोटा विकल्प करे, 'एसी ऋद्धि मने क्यों नहीं मिली' सो महा मूर्ख ।

२० वीसमें बोले—दुष्ट जीव परका अवगुण देखे, आपका अवगुण देखे नहीं आतो गुणवान देखी तीण मांहि खोट काढे सो महा मूर्ख ।

२१ इकविसमें बोले—सुखी होवाने अर्थे जीभ का स्वाद अर्थ तथा कामभोग सेवा अर्थे घणा पाप करे, घणा लस भेद करीने पांभेजो करे सो महा मूर्ख ।

२२ बाविसमें बोले—केहने पोत जीभ का स्वाद अर्थ नरा काम घणा जीवां को नाश करे सो

२३ तेइसमें बोले—सर्व जीवांने आपणी आत्मा सरीखा जाण कर फिर दया रा परीणाम नहीं राखे सो महा मूर्ख।

२४ चोविसमें बोले—वचन विचारने बोले नहीं पाप सहित, हांसि सहित, भय सहित, अन्याय सहित, सराप सहित, ऐसा वचन बोले सो महा मूर्ख।

२५ पच्चिसमें बोले—विना अर्थ दिन गमावे मनुष्य जन्म का वक्त सहज में विकथा मांहि दिन गमावे सो महा मूर्ख।

२६ छव्विसमें बोले—ज्ञानवान होय, पांच इन्द्रिय के भोग की इच्छा बधावे, मन इन्द्रिय ने वश नहीं करे सो महा मूर्ख।

२७ सत्ताविसमें बोले—ज्ञानवान होय के अभिमान करे, तथा पापकर्ता मन में शंका, भय नहीं लावे सो महा मूर्ख।

२८ अट्ठाइसमें बोले—विना प्रयोजन मनने

ऊंच, नीच, ठिकाणे दौड़ावे, रूपवान स्त्री देखी चाहना करे अने कुसंकल्प विकल्प मनसुं उठावे, घणा पाप कर्म बांधे सो महा मूर्ख।

२९ उन्नतीसमें बोले—छति शक्ति निरोग शरीर पाय कर तपस्यादि न करे सो महा मूर्ख।

३० तीसमें बोले—पूर्व जन्मरी कमाईरा जोगसुं अशुभ कर्म भोगवतां, घणो हाय विलाप करे और अति रुद्र ध्यान चितवें सो महा मूर्ख।

३१ इकत्तिसमें बोले—मनुष्य जन्म पायकर आत्म तत्व नहीं विचारे, अच्छा धर्म्म कारज की चिंतवना नहीं करे सो महा मूर्ख।

३२ बत्तिसमें बोले—धर्म्मी पुरुष (आत्मार्थि) को आत्मसाधन करता देखी, तिणांरी निन्दा करे, तिणां उपरी द्वेष धरे, ईर्षा करे, तिणांरो अपवाद बोले तथा हासि करे सो महा मूर्ख।

३३ तेतिसमें बोले—श्री भगवंत वीतराग-

२३ तेइसमें बोले—सर्व जीवांने आपणी आत्मा सरीखा जाण कर फिर दया रा परीणाम नहीं राखे सो महा मूर्ख ।

२४ चोविसमें बोले—वचन विचारने बोले नहीं पाप सहित, हांसि सहित, भय सहित, अन्याय सहित, सराप सहित, ऐसा वचन बोले सो महा मूर्ख ।

२५ पच्चिसमें बोले—विना अर्थ दिन गमावे मनुष्य जन्म का वक्त सहज में विकथा मांहि दिन गमावे सो महा मूर्ख ।

२६ छव्विसमें बोले—ज्ञानवान होय, पांच इन्द्रिय के भोग की इच्छा बधावे, मन इन्द्रिय ने वश नहीं करे सो महा मूर्ख ।

२७ सत्ताविसमें बोले—ज्ञानवान होय के अभिमान करे; तथा पापकर्ता मन में शंका, भय नहीं लावे सो महा मूर्ख ।

२८ अट्ठाइसमें बोले—विना प्रयोजन मनने

ऊंच, नीच, ठिकाणे दौड़ावे, रूपवान स्त्री देखी चाहना करे अने कुसंकल्प विकल्प मनसुं उठावे, घणा पाप कर्म बांधे सो महा मूर्ख।

२९ उन्नतीसमें बोले—छति शक्ति निरोग शरीर पाय कर तपस्यादि न करे सो महा मूर्ख।

३० तीसमें बोले—पूर्व जन्मरी कमाईरा जोगसुं अशुभ कर्म भोगवतां, घणो हाय विलाप करे और अति रुद्र ध्यान चितवें सो महा मूर्ख।

३१ इकत्तिसमें बोले—मनुष्य जन्म पायकर आत्म तत्व नहीं विचारे, अच्छा धर्म्म कारज की चिंतवना नहीं करे सो महा मूर्ख।

३२ बत्तिसमें बोले—धर्म्मी पुरुष (आत्मार्थि) को आत्मसाधन करता देखी, तिणांरी निन्दा करे, तिणां उपरी द्वेष धरे, ईर्षा करे, तिणांरो अपवाद बोले तथा हासि करे सो महा मूर्ख।

३३ तेत्तिसमें बोले—श्री भगवंत वीतराग-

२३ तेइसमें बोले—सर्व जीवांने आपणी आत्मा सरीखा जाण कर फिर दया रा परीणाम नहीं राखे सो महा मूर्ख ।

२४ चोविसमें बोले—वचन विचारने बोले नहीं पाप सहित, हांसि सहित, भय सहित, अन्याय सहित, सराप सहित, ऐसा वचन बोले सो महा मूर्ख ।

२५ पच्चिसमें बोले—विना अर्थ दिन गमावे मनुष्य जन्म का वक्त सहज में विकथा मांहि दिन गमावे सो महा मूर्ख ।

२६ छव्विसमें बोले—ज्ञानवान होय, पांच इन्द्रिय के भोग की इच्छा बधावे, मन इन्द्रिय ने वश नहीं करे सो महा मूर्ख ।

२७ सत्ताविसमें बोले—ज्ञानवान होय के अभिमान करे, तथा पापकर्ता मन में शंका, भय नहीं लावे सो महा मूर्ख ।

२८ अट्ठाइसमें बोले—विना प्रयोजन मनने

जन्म मरण कर्या, अनंता दुःख देख्या तिणने बिसारे सो महा मूर्ख।

३८ अड़त्तिसमें बोले—इण जन्मने विषे उत्तम कार्य नहीं करे, अथवा छति शक्ति पर उपकार नहीं करे सो महा मूर्ख।

३९ उगनचालिसमें बोले—आयुष्यरो चपल पणो देख फेर संसार मांहि, राचो माचो रहे, म्हारो थारो करे सो महा मूर्ख।

४० चालिसमें बोले—विना घृत होम्या तृष्णा रूप अग्नि से ज्वाला उठ रही है तिण मांहि फिर परिग्रह रूप घृत होमने शीतल कियो चहावे सो महा मूर्ख।

४१ इगतालिसमें बोले—नरकरी अनंती वेदना शास्त्र मांहि सांभलि हिया मांहि अच्छि तरह जाणिने फेर आत्मा ने समझावे नहीं, पाप करता शंके वर्जे नहीं सो महा मूर्ख।

४२ बयालिसमें बोले—जरा अवस्था आय

रा वचन मांहि प्रतीत नहीं राखे, मन मांहि शंका कंखा करी आपरो जन्म बिगाड़े सो महा मूर्ख।

३४ चौत्तिसमें बोले—महा मोटा गुणवान उत्तम पुरुष होय तेहना गुणग्राम नहीं करे सो महा मूर्ख।

३५ पेत्तिसमें बोले—संसार रूप दावानल, मांहि काम, क्रोध, लोभ, मोहे करीने लिप्त रहे पिण बलति आग मांहिसुं सार वस्तु धर्म्म रत्न नहीं काढ़े सो महा मूर्ख।

३६ छत्तिसमें बोले—अनंता काल रुलतां घणां पुराय रा उदय सुं मनुष्य रूप साताकारि विश्राम पायो, फिर पायकर विश्रामरी जग्यां क्लेश बढ़ावे, आत्मा ने फिर दुःख मांहे पटके सो महा मूर्ख।

३७ सेंत्तिसमें बोले—गया काल में अनंता

मरतो प्रत्यक्ष देखे है, पिण मन मांहि मरवारो भय नहीं लावे, और लक्ष्मी परिवार सर्व स्थिर करी जाणे, पिण क्षण मांहि विनाश होय जायगा ऐसी नहीं विचारे सो महा मूर्ख।

४६ छीयालिसमें बोले—मूर्ख जीव संसार रा कारज अकाम है, जिणने तो सकाम कर जाणे, और आपणा निज ज्ञान ने प्रगट करणे से अनंता काल रा दुःख दूर होय जावे ऐसो मोटो काम है तिणने अकाम करी जाणे सो महामूर्ख।

४७ सेत्तालिसमें बोले—अज्ञानी जीव आपणो नाम कर्म्म बढ़ावा ने तथा कीर्ति बढ़ावा ने अनेक आरंभ करे महा मोटा पाप करे कुछ भय नहीं राखे, पिण अनेक भवांरे विषय भुगतना पड़ेगा, ऐसो विचार नहीं करे सो महा मूर्ख।

४८ अड़तालिसमें बोले—पूर्व भवरी कमाईरे जोग सुं लक्ष्मि पायकर पाप कर्म्म करतां शंके वर्जे नहीं सो महा मूर्ख।

भरोसो नहिं और अज्ञानि जीव धर्म्म करवारा वायदा करे सो महा मूर्ख।

५३ तरेपनमें बोले—अभवि जीव दूजां को उपदेश देवे, आपणी आत्मा ने समझावे नहीं, ऐसे ही मूर्ख अज्ञानि, लोकां ने ठगवाने राजि करवा धर्म्म उपदेश देवे, आपणि कीर्ति वधारवा की आशा सहित, धर्म ध्यान क्रियादिक करे सो महा मूर्ख।

५४ चोपनमें बोले—आप पोते सुखिया है, और दूजां को दुखिया देखी, आप राजी होवे, दुखियों की हांसि करे दीन हीन दुर्बल की करुणा मन मांहि नहीं आणे, दया नहीं लावे सो महा मूर्ख।

५५ पचावनमें बोले—ज्ञान पायारो सार कांई है आपणि आत्मा को कल्याण करना, दूजा जीवां ने उपदेश देणां ज्ञानका पुस्तकां पाना लखाय २ देणां, धर्म्म के मार्ग लगाय

४९ गुनचासमें बोले—केई अज्ञानि जीव शक्ति होय जद तो धर्मध्यान करी आत्मारो कल्याण करे नहीं, फिर वृद्ध अवस्था में इन्द्रियां हिण पड़ जावे तब तिणरी इच्छा करे पिण बण नहीं सके-जैसे आग लाग्या कुओ खुदावारो उपाय करे सो महा मूर्ख।

५० पचासमें बोले—शील, संतोष, क्षमा, दया, गम्भीरता, धैर्य, इत्यादि अनेक भला २ गुणांरो बढ़ावारो अभ्यास नहीं करे तथा सुगुरु धर्मी पुरुषरी संगत नहीं करे सो महा मूर्ख।

५१ इकावनमें बोले—हिंसा, झूंठ, चोरी, कुशील, बदचलन निंदा, ईर्षा, कपटाई, खोटी संगत इत्यादिक अनेक अशुभ कार्य नहीं छोड़े सो महा मूर्ख।

५२ बावनमें बोले—धर्म की बात तथा श्रद्धा नहीं राखे, धर्म्म करतां आलस करे, काल चक्र माथा ऊपरि घूम रह्यो है, छिण एकरो

भरोसो नहिं और अज्ञानि जीव धर्म करवारा वायदा करे सो महा मूर्ख ।

५३ तरेपनमें बोले—अभवि जीव दूजां को उपदेश देवे. आपणी आत्मा ने समझावे नहीं, ऐसे ही मूर्ख अज्ञानि, लोकां ने ठगवाने राजि करवा धर्म उपदेश देवे, आपणि कीर्ति वधारवा की आशा सहित, धर्म ध्यान क्रियादिक करे सो महा मूर्ख ।

५४ चोपनमें बोले—आप पोते सुखिया है, और दूजां को दुखिया देखी, आप राजी होवे. दुखियों को हांसि करे दीन हीन दुर्बल की करुणा मन मांहि नहीं आणे, दया नहीं रखे सो महा मूर्ख ।

उपकार करणा तिण मांहि घणो लाभ है, कोइ हिणबुधियो ज्ञान पाय कर दूंजां को उपकार करे नहीं, ज्ञान छुपावतो फिरे सो महा मूर्ख ।

५६ छप्पनमें बोले, कोइ कुं धर्म्म ध्यान, व्रत, नेम पच्चखाण तपस्या करतां वर्जणा नहीं, अंतराय देणी नहीं, केइएक अज्ञानि आपणां कुटुम्ब कुं मोह भावे वर्जे है सो महा मूर्ख ।

५७ सत्तावनमें बोले—कूव्यसनि हिंसक झूंठो लापर काछलपटी चोर अन्यायी, चुगल, इर्षावन्त, क्रोधि मानि, कपटि, लोभि, अधीर्य-वान, इत्यादिकरी संगत करी, आपरो ज्ञान गुण इजत आबरू कुरम कायदो बधार्यो चहावे सो महा मूर्ख ।

५८ अट्ठावनमें बोले—क्रोध, लोभ, भय हांसि, इण चार प्रकार से, झूठरो पाप घणो लागे है, हे चेतन ! जो तुं थारी आत्मारो कल्याण कर्यो चहावे है तो असत्य वचन को त्याग,

तिणसुं सर्व पाप टल जायगा, ऐसा जाण उप-योग नहीं राखे सो महा मूर्ख।

५६ गुनसठमें बोलो—दशवाना घटायां घटे, और बधयां वधे, तिणारा नाम—१ क्लेश, २ हांसि, ३ मैथुन ४ खाज, ५ शोक, चिंता, ७ निद्रा, ८ वैर, ६ तृष्णा, १० निंद्या, इणने नहीं घटावे सो महा मूर्ख।

६० साठमें बोले—ज्ञान बढने का दश उपाय कह्या है (१) आहार थोड़ो करे (२) निद्रा थोड़ी लेवे (३) थोड़ो बोले (४) पंडित पास रहें (५) क्रोध नहीं करे (६) विनय घणो करे (७) पांच इन्द्रिय को स्वाद जीते याने छोडे (८) घणा शास्त्र बांचे (९) ज्ञानवानरे पास भणे (१०) घणो उद्यम करे, इण दश उपाय करके ज्ञान की वृद्धि नहीं करे, छतो जोगवाई आलस करे सो महा मूर्ख।

६१ इगसठमें बोले—जीवने दश वस्तु की सामग्री पावणी महा दुर्लभ कही है—१

उपकार करणा तिण मांहि घणो लाभ है, कोइ हिणबुधियो ज्ञान पाय कर दूजां को उपकार करे नहीं, ज्ञान छुपावतो फिरे सो महा मूर्ख ।

५६ छप्पनमें बोले, कोइ कुं धर्म्म ध्यान, व्रत, नेम पच्चखाण तपस्या करतां वर्जणा नहीं, अंतराय देणी नहीं, केइएक अज्ञानि आपणां कुटुम्ब कुं मोह भावे वर्जे है सो महा मूर्ख ।

५७ सत्तावनमें बोले—कूव्यसनि हिंसक झूंठो लापर काछलपटी चोर अन्यायी, चुगल, इर्षावन्त, क्रोधि मानि, कपटि, लोभि, अधीर्य-वान, इत्यादिकरी संगत करी, आपरो ज्ञान गुण इजत आबरू कुरम कायदो बधार्यो चहावे सो महा मूर्ख ।

५८ अट्ठावनमें बोले—क्रोध, लोभ, भय हांसि, इण चार प्रकार से, झूठरो पाप घणो लागे है, हे चेतन ! जो तुं थारी आत्मारो कल्याण कर्यो चहावे है तो असत्य वचन को त्याग,

तिणसुं सर्व पाप टल जायगा, ऐसा जाण उपयोग नहीं राखे सो महा मूर्ख।

५६ गुनसठमें बोलो—दशवाना घटायां घटे, और बधयां वधे, तिणारा नाम—१ क्लेश, २ हांसि, ३ मैथुन ४ खाज, ५ शोक, चिंता, ७ निद्रा, ८ वैर, ६ तृष्णा, १० निंद्या, इणने नहीं घटावे सो महा मूर्ख।

६० साठमें बोले—ज्ञान बढने का दश उपाय कह्या है (१) आहार थोड़ो करे (२) निद्रा थोड़ी लेवे (३) थोड़ो बोले (४) पंडित पास रहें (५) क्रोध नहीं करे (६) विनय घणो करे (७) पांच इन्द्रिय को स्वाद जीते याने छोडे (८) घणा शास्त्र बांचे (९) ज्ञानवानरे पास भणे (१०) घणो उद्यम करे, इण दश उपाय करके ज्ञान की वृद्धि नहीं करे, छतो जोगवाई आलस करे सो महा मूर्ख।

६१ इगसठमें बोले—जीवने दश वस्तु की सामग्री पावणी महा दुर्लभ कही है—१ मनुष्य

६५ पेंसठमें बोले—अरे चैतन ! धर्म्म करवा को अवसर चल्यो जाय है, क्षण २ में आउखो घटे है, पिण तुं कांइ बिचारे है नहीं इसो मनुष्य जन्म पाय कर वृथा हार जावे है, अरे ! मूर्ख ! गयो अवसर फिर पिछो आवेगा नहीं नित्य नई तृष्णा बढ़ावे है पिण हियामांहि अच्छि तरह बिचार देख, जो तृष्णा बधायां, संसार बढे है तृष्णा घटायो संसार घटे है, ऐसो बिचार कर तृष्णा नहीं घटावे, सो महा मूर्ख।

६६ सासठमें बोले—कोई जगत मांहिं सुखी है नहीं, जहां देखो तहां सब जीव कर्म्मो का जोग सुं दुखी हो रह्या छे, घणा अज्ञानी मोह भावसुं कर संसार मांहिं सुख मान रह्या है, पिण सुख कदी भी होवे नहीं। ज्युं बलती आग मांहि शीतलता होवे तो संसार मांहि सुख होवे सुख तो आपणे संतोष भाव में है सो संतोषको छोड़ कर मनकी विकलता बढ़ावे है सो महा मूर्ख।

६७ सड़सठमें बोले--हे चैतन्य! तुं इण संसार मांहि कांइ लोभाय रह्यो छे, अज्ञान दशा मांहिं कांइ थारो म्हारो कर रह्यो छै, कोइ किणरो नहीं, सर्व आप आपणा स्वार्थने रोवे है जिणने स्वार्थ नहीं पोंहचे सो राजी नहीं, पूगे सो राजि, अरे! भोला! तने मोह छाक चढ़ रही है, तिणसुं कांई सूझ तो नहीं, पिण आगे घणो दुख भोगनो पड़ेगा, ऐसो बिचार कर संसार सुं उदासिनता भावे नहीं रहे सो महा मूर्ख।

६८ अड़सठमें बोले—अरे! जीव! तुं देख आगे पूर्व जन्म मांहि अच्छि पुण्य कमाइ नहीं किनि तिणसुं यहां दुखी होय रह्यो है, पराधीन पणे आजीविका पूरी करे है। फिर इण जन्म मांहि सुकृतकार्य करी खर्चि साथ बांधे नहीं सो आगे फिर भी दुखी होगा, ऐसो विचारी उपाय नहीं करे, सो महा मूर्ख।

करतो कांइ बिचारतो नहीं तुं जाणे है लक्ष्मी भेली करूंगा सो दुख की वक्तमें काम आवेगा सो दुख की बक्तमें तो पाप को उदय आवे है, जेवारे पापरो उदय आवे है तिवारे लक्ष्मी पिण रहेगा नहीं लक्ष्मी तो पुण्यरा उदयमें हिज है ऐसो बिचार मूर्छा छोड कर आत्मसाधन नहीं करे सो महा मूर्ख।

७० सोत्तरमें बोले—अरे! भोला! तुं पेट भरवारे वास्ते सोच कर नये कर्म्मा का बंध काहेकुं बांधता है, जो कुछ पूर्व जन्म मांहिं कमाइ कर साथ लायो है, सो यहां आपो आप सहज ही मिलजायगा, सोच कियां कुछ अधिको ओछो होवे नहीं ऐसो विचार, आत्मा स्थिर नहीं करे सो महा मूर्ख।

७१ इकहत्तरमें बोले—जगत मांहि आप आपणा मनका झगड़ा कर रह्या है, पिण तत्व बात कोई विचारे नहीं, तत्व बात को स्वमत में

दोहा ।

बोल बोहत्तर ए कह्या, जिनागम अनुसार ।
सुणे सुणावे सरदहे, ते पावे भवपार ॥ १ ॥
ज्ञान बोहतरी नाम है, कीनि भवि उपकार ।
अम्बालाल अर्जि करे, मुझ प्रभु पार उतार ॥२॥
मैं अनाथ अतहि दुखी, डर्यो देखी संसार ॥
ताते नाथ सरण ग्रही, अब मोहे वेग उतार ॥३॥
सत्त उन्निसे सात के, वदि दसमी फागुन मास ।
रत्नपुरि मांहि रची, पर निज आतम प्रकाश ॥४॥

(इति श्री आतम बिचार वैराग्य रूप ज्ञान बहोतरी सम्पूर्ण)

अथ व्यवहार समकित का ६७ बोल लिख्यते

पहले-सरदहणा ४, दूजे—लिंग ३, तीजे विनय १० प्रकार, चौथे—शुद्धता ३, पांचवें-लक्षण ५, छठे—दूषण ५, सातवें—भूषण ५, आठवें—प्रभाविक ८, नववें आगार ६, दसवें-जयणा ६, ग्यारवें—स्थानक ५, बारहवें भावना ६, ए ६७ बोल है।

पहला—चार सद्दहणा।

१ नवतत्व जाणवानो उद्यम करे।

२ सूत्र सिद्धान्त का जाण आचार्यदिक जिन्हों की शुद्ध मन से सेवा करे।

३ जिन मारग गोपी ने आपणो मत चलावो तिणकी संगत न करे।

४ सम्यक्त से भ्रष्ट होय तिकेरो परिचय न करे।

दूसरी तरह से (पाठान्तरे) भेद ४।

१ परमार्थ नो परिचय करे।

२ परमार्थना जाणकारनी सेवा करे।

३ धर्म्म पायने बम्यो तेहनी संगत वर्जे।

४ कुतीर्थियोंनी संगत वर्जे।

दूजे—तीन लिङ्ग।

१ जिम किन्नर जातिना देवता गीत नाद ने एकाग्रह चित्त देइने सुणे, तिम सूत्र सिद्धान्त का उपदेश सुणे॥ १॥

२ जिम भुखाने अन्न उपरे अभिलाष होय, तिम शील, दया, क्षमादि, पालवा उपर अभिलाष होय॥ २॥

३ चतुर्विध संघ आदि देइने सर्व जीव ने शाता उपजावे॥ ३॥

पाठान्तरे इसी का दूसरा।

१ जिम तरुण पुरुष रंग राग उपर राचे

तिम वीतरागनी वाणी उपर राचे।

२ तीन दिन को भूखो पुरुष खीर खांड को भोजन आदर सहित करे तिम वीतरागनो वाणी आदर सहित सुणे।

३ जिम अणभणिया ने भणवारी चाह होय, अने भणवानी जोगवाई मिल्याथी हर्षवंत होय, तिम वीतरागनो वाणी सुणीने हर्षवंत होय॥ ३॥

तोजे दश प्रकार का विनय।

१ अरिहंतजी की विनय भक्ति करे।
२ सिद्धजी की विनय भक्ति करे।
३ आचार्यजी की विनय भक्ति करे।
४ उपाध्यायजी की विनय भक्ति करे।
५ स्थिवरजी की विनय भक्ति करे।
६ कुलकी विनय भक्ति करे।
७ गच्छ समुदायकी विनय भक्ति करे।
८ चतुर्विध संघकी विनय भक्ति करे।

९ साधर्मि की विनय भक्ति करे ।

१० क्रियावन्त की विनय भक्ति करे ।

पाठान्तरे इसी का ;

१ अरीहंतजी का विनय ।

२ सिद्धजी का विनय ।

३ आचार्यजी का विनय ।

४ उपाध्याय जी का विनय ।

५ स्थिवरजी का विनय ।

६ तपस्विजी का विनय ।

७ बहुश्रुतीजी का विनय ।

८ संभोगी का विनय ।

९ चार तीर्थ का विनय ।

१० साधर्मि का विनय ।

चौथे सम्यक्तनी तीन शुद्धता (परीक्षा)

१ श्री अरीहंत देवजी ने तो देव जाणे ।

२ श्री सुसाधु महा पुरुषांने गुरु जाणे ।

३ दया क्षमा ये धर्म जाणे ।

पाठान्तरे तीन शुद्धता ।

१ मन शुद्धता—मने करी श्री वीतराग देवने ध्यावे ।

२ बचन शुद्धता—वचने थकी गुणग्राम श्रीवीतराग देवना करे ।

३ काया शुद्धता—कायायें करी श्री वीतराग देव ने नमस्कार करे ।

पांचमे—लक्षण पांच ।

१ सम—शत्रु मित्र उपर सरीषा भाव राखे ।

२ समवेग—वैराग्य भाव राखे ।

राखे तो दोष। अर्थात् जिन वचन पर निशंक पणे वर्ते तो दोष टले।

२ कंखा—अन्य तीर्थि नो आडम्बर देखीने चाह करे तो दोष लागे, अनेरा धर्म्म की वांछा करे नहीं तो दोष टले।

३ वितिगिच्छा—करणीरे फल माहे संदेह आणे, वा, साधु साध्वीना मलिन वस्त्र देखीने दुर्गच्छा करे तो दोष अतिचार लागे, श्री तीर्थंकरदेवजीनी आज्ञा सहित, करणी करे छे, ते उपर वितिगिच्छा आणे नहीं, तो दोष टले।

४ परपाखंडी प्रशंसा—अनेरा तीर्थि की कीर्ति करे तो दोष अतिचार लागे, परदर्शणि की प्रशंसा शोभा गुण कीर्ति करे नहीं तो दोष टले।

५ परपाखंडी संथव—अन्य तीर्थिरे पासे जाणो आणो राखे, तथा संगत करे तो दोष अतिचार लागे, परपाखंडी को परचो संग करे नहीं तो दोष टले।

सातमें—सम्यक्तका पांच भूषण।

१ जिन शासन के विषय चतुराई राखे और धीरज वंत होय।

२ जिन मारगने तथा गुणांने दिपावे।

३ जिन शासन विषय सुसाधु, साध्वी गुणवान तिणो की भक्ति सेवा करे।

४ अनेरा पुरुष ने धर्म के विषे स्थिर करे।

५ चतुर्विध संघकी सेवा करे।

आठमें—सम्यक्तका आठ प्रभाविक।

१ जिण काले जितना सूत्र होय, ते भणी अन्य जीवों ने प्रतिबोधी उन्नति करे।

२ धर्म कथा कहने में चतुर होवे।

३ प्रत्यक्ष दृष्टान्त पूर्वक अन्य धर्मी से वाद कर धर्म दीपावे।

४ निमित्त ज्ञाने करी भूत भविष्यत वर्तमान की वात कहे।

५ विकट तपस्या करी धर्मकी उन्नति

६ अनेक प्रकार की विद्या का जाणकार होवे।

७ प्रसिद्ध व्रत लेवे।

८ कविता जोड़कला करी धर्म्म की उन्नति करै।

नवमें—६ आगार।

१ राजा के आग्रह से (हठ से) अन्यतिर्थि को बंदना करे तो सम्यक्त भागे नहीं।

२ बहुत सज्जनादिक के कहने से अन्य तिर्थि को बंदनादि करे तो सम्यक्त भागे नहीं।

३ जोरावर तथा बलवन्त के केहने से अन्य-तिर्थि को बंदनादि करे तो सम्यक्त भागे नहीं।

४ देवता के कहने से अन्य तिर्थि को बंद-नादि करने से सम्यक्त भागे नहीं।

५ माता पिता तथा गुरुआदिक के हठ से अन्यतिर्थि को बंदनादि करे तो सम्यक्त भागे नहीं।

६ दुकाल पड्या अथवा अटविने विषे भूला पड्या अन्यतिर्थि ने बंदनादि करने से सम्यक्त भागे नहीं ।

इसमें—सम्यक्त की ६ जयणा (यत्ना)

१ अन्यतीर्थि देवगुरु ने वांदे नहीं ।

२ अन्यतीर्थिना गुणग्राम करे नहीं ।

३ अन्यतीर्थि सुं पहिली, बोल्या विना आप बोले नहीं ।

४ अन्यतीर्थिनी वार वार परिचय संगत करे नहीं ।

५ अन्यतीर्थि ने चार प्रकार नो दान देई सरावना न करे ।

६ अन्यतीर्थिने वस्तु देता निर्जरा जाणे नहीं।

पाठान्तरे छ जयणा ।

पहले—अलाप, दुजे-सालाप, तीजे-दान चौथे—प्रदान, पांचवें-वन्दणा, छठे—गुणग्राम ।

अलाप—समकिती ने बतलायवो ।

सालाप—विशेष मिष्ठ बचने बतलावो ।

दान—प्रतिलाभवो । प्रदान बहुमान देवो । वन्दणा नमस्कार करवो । गुणग्राम जस वर्णन करवो ।

ग्यारवें—सम्यक्तना छ स्थानक ।

१ चारित्र धर्म्म रूपी वृक्ष अने सम्यक्त रूपी मूल (बीज) ।

२ चारित्र धर्म्म रूपीयो नगर अने सम्यक्त रूपी दरवजो ।

४ चारित्र धर्म्मरूपी महेल अने सम्यक्त रूपी नीव ।

३ चारित्र धर्म्म रूपी आभूषण (गहणा) सम्यक्त रूपी मजुस (संदुक) ।

५ चारित्र धर्म्म रूपी वस्तु (क्रियाणो) अने सम्यक्त रूपी दुकान ।

६ चारित्र धर्म्म रूपी भोजन अने सम्यक्त रूपी थाल ।

बारहवें सम्यक्तनी छ भावना ।

१ जीव द्रव्य का चेतना लक्षण छे ।

२ जीव द्रव्य नित्य शास्वतो छे ।

३ जीव आठ कर्म्मों का कर्त्ता छे ।

४ जीव कर्म्मों का भोक्ता छे ।

५ भव्य जीव आठ कर्म्म क्षय करी मोक्ष पावे ।

६ ज्ञान दर्शन चरित्र मोक्ष का उपाव छे।

पाठान्तरे ६ भावना ।

१ पेली भावना—समदृष्टी पुरुष आपके चेतन ने असंख्या परदेशी जाणे ।

२ दूसरी भावना—समदृष्टी पुरुष आपके चेतन ने आठ कर्मों का कर्ता जाणे ।

३ तीसरी भावना—समदृष्टी पुरुष आपके चेतन ने आठ कर्मों का भोक्ता जाणे ।

४ चौथी भावना—समदृष्टी पुरुष आपका आठ रूचिक प्रदेश सिद्ध समान जाणे ।

५ पांचवी भावना समदृष्टी पुरुष आपके चेतन ने मोक्ष जाने वाला जाणे।

६ छट्ठी भावना समदृष्टी पुरुष मोक्ष का चार कारण जाणे, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप।

पाठान्तर भावना।

१ अनित्य भावना—ते संसारना सर्व पदार्थ धन जबन, शरीर, कुटुम्बादि सर्व अनित्य छे अथीर छे विनाश पामे ऐसो चिंतवे ते भावना भरतेश्वरजी ने भाई।

२ अशरण भावना—ते जीव ने रोग मरण पीड़ादिक आवे तो बंधव कुटुम्ब परिवार नो शरणो इच्छे नहीं ते, दुख आपदा पड्या निवार सके नहीं ते भावना अनाथीजी भाई।

३ संसार भावना—ते यो जीव कर्म्म करीने चार गति चौरासी लाख जीवा योनि माहि परिभ्रमण करीने बाप फिटी बेटो थयो बेटो फिटी बाप थयो ते भावना शालीभद्रजी ने भाई।

४ एकत्व भावना—ते यो जीव परलोक थकी एकलो ही आयो अने एकलो ही जासी, भला बुरा कर्म्म एकलो ही भोगवसि ते भावना नमिराजा ने भाई।

५ अशुचि भावना—ते यो शरीर सदा ही अशुचिनो भाजन छे मांस लोही नख नसा जाले करीने तथा चामड़ी करीने विंट्यो छे, तेहने धोयां शुचि न होवे इम चिंतवे ते भावना सनतकुमार जी चक्रवर्ति जी ने भाई।

६ अन्य भावना—धन कुटुम्ब सब मेरे से जुदा है ते भावना मृगापुत्रजी ने भाई।

यह सड़सठ भेद व्यवहार सम्यक्त के जाणवा।

॥ इति ६७ बोल समाप्त ॥

॥ इति समाप्तम् ॥

श्रीरस्तु शुभं भवतु।

पुस्तक मिलनेका पता—

अगरचंद भैरोंदान सेठिया

का

श्री जैन विद्यालय

महोल्ला मरोटीयों का

बीकानेर (राजपूताना)

या

अगरचंद भैरोंदान सेठिया

श्री जैन ज्ञान प्रचारक—

कन्या पाठशाला ।

मोहल्ला मरोंटियोंका
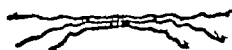
बीकानेर (राजपूताना)

यह पुस्तक जेसा लिखा हुवा ग्रन्थ पुस्तक पानमें देखा वांचा वैसा ही अल्प बुद्धि अनुसार छपाया है तत्व केवलीगम्य ।

॥ सोरठा ॥

ऐसो अर्थ मतमान, सुत्र ने लागे ठवक ।
तह मेव सत्य जान, प्रसिद्ध करता इम वीनवे ॥

शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!

सेवं भंते सेवं भंते ।

आत्र, कानो, मात, अनुस्वार ह्रस्व दीर्घ ओछो अधिको, आगो पाछो लिख्यो होय या छपणे में रहगयो होय तस मन वचन काया करी मिथ्या दुष्कृत देत हुँ ।

विनीत—

भेरोंदानजी सेठीया तत्लघु पुत्र युगराज गैनपाल

॥ कल्याणमस्तु ॥

पत्र व्यवहार।
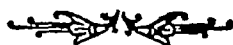
चिट्ठी पत्री नीचे लिखे पत्तेसे भेजे और अपना ठीकाना पता नागरी (हिन्दी) अंग्रेजी दोनों भाषामें साफ साफ अक्षरों से पूरा लिखे गाम और शहर का नाम, पोष्ट आफिस तथ जिला अंग्रेजी में साफ साफ लिखे और डा खर्च के लिये टिकट भेजे। किताब हमारे स्टाक में तैयार होगा तो भेज दिया जायगा अगर किसीको पहला पूछना हो तो जवा पोस्टकार्ड लिखकर पूछ लेवे।

अगरचंद भैरोंदान सेठिया।

श्रीजैन ग्रन्थालय।

मोहल्ला मरोटीयां का।

बीकानेर (राजपूताना)